खण्ड 3

पद, वाक्य एवं अर्थविज्ञान

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 पदविज्ञान

इकाई 9 वाक्यविज्ञान

इकाई 10 अर्थविज्ञान

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 पदविज्ञान (रुपविज्ञान)

इकाई की रुपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 रूपविज्ञान का परिचय

8.2.1 रूपिम, रूप एवं संरूप की अवधारणा

8.2.2 रुपिम के प्रकार

8.2.3 रुपसिद्धि (रुपसाधक) एवं व्युत्पादक रूपिम

8.2.4 रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया

8.3 शब्द एवं पद

8.3.1 शब्द बनाम रूपिम

8.3.2 शब्द के प्रकारः रुपिमिक संरचना के आधार पर

8.3.3 शब्द निर्माण की प्रक्रिया

8.4 रूपस्वनिमविज्ञान

8.5 सारांश

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- रुपविज्ञान के बारे में जान पाएँगे।
- रूप, रूपिम एवं संरूप की अवधारणा को समझ पाएँगे।
- रूपिम के प्रकार से अवगत हो पाएँगे।
- रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया को समझ पाएँगे।
- शब्द और रूपिम में अंतर समझ पाएँगे।
- शब्द निर्माण की प्रक्रिया को समझ पाएँगे
- रुपस्वनिमविज्ञान के बारे में जान पाएँगे।

8.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में आपने स्वन तथा स्वनिम के बारे में पढ़ा होगा। इस इकाई में आप रूप तथा रूपिम से अवगत हो पाएँगे। वस्तुत्तः स्वनिम के पश्चात भाषा की अर्थवान इकाई रूपिम है जिस पर चर्चा करना अनिवार्य है। आमतौर पर ध्वनी को भाषा की

सबसे छोटी इकाई मानी जाती है और ध्वनियों को मिलाकर बने सार्थक इकाई को शब्द कहा जाता है। इस प्रकार ध्वनि के बाद शब्द को ही भाषा की बड़ी इकाई माना जाता है परंतु भाषाविज्ञान में ध्वनि के बाद शब्द के बदले रूपिम को भाषा संरचना की अर्थवान इकाई मानते हैं। वस्तुतः शब्द और रूपिम में अंतर है क्योंकि प्रत्येक शब्द रूपिम हो सकता है परंतु प्रत्येक रूपिम शब्द नहीं हो सकता और तो और रूपिम का प्रयोग कर हम नए शब्दों का निर्माण भी कर सकते है। शब्द का प्रयोग जब वाक्य संरचना में किया जाता है तो शब्दों के साथ कुछ ऐसे व्याकरणिक तत्व जैसे की उपसर्ग–प्रत्यय इत्यादि लगाये जाते है जो शब्द के मूल रूप को बदल देते है और शब्द एक नए रूप में वाक्य में प्रयोग किया जाता है। शब्द कि इसी संरचना को ही रूप या पद कहा जाता है। पद रचना का प्रयोग भी रूपिम के द्वारा ही किया जाता है। इस इकाई में आप इन्हीं विषय–वस्तुओं के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.2 रुपविज्ञान का परिचय

रुपविज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत शब्द की आतंरिक संरचना तथा शब्द निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। अंग्रेजी में रुपविज्ञान को 'Morphology' (मर्फोलोजी) के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजी के 'Morphology' शब्द में 'Morph' का अर्थ होता है 'रूप' और 'logy' का अर्थ होता है 'विज्ञान'। अंग्रेजी में इसे 'Morphemics' के नाम से भी जानते है जिसे हिंदी भाषा में 'रूपग्राम–विज्ञान', 'पदिमविज्ञान', 'मर्षिमी', 'रूपिम–विज्ञान' इत्यादि नाम दिए गए हैं। वर्तमान में इसे 'पदविज्ञान' या 'रुपविज्ञान' के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः हिंदी भाषाविज्ञान में ज्यादातर इसे 'पदविज्ञान' के नाम से ही जानते है। किसी–किसी जगह पर 'पदविज्ञान' के बदले 'रुपविज्ञान' का प्रयोग भी देखा जाता है। हालाँकि 'रुपविज्ञान' अंग्रेजी में प्रयुक्त 'Morphology'(मर्फोलोजी) शब्द का ही हिंदी रूपांतरण या अनुवाद है।

रुपविज्ञान या पदविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख केंद्रबिंदु किसी भी भाषा में मौजूद शब्दों/पदों का सार्थक विभाजन कर उसमे प्रयुक्त रूपिमों का निर्धारण एवं विश्लेषण करना है। इसके अतिरिक्त इसके अंतर्गत किसी भी भाषा में रूपिमों का प्रयोग कर नए या नवीन शब्दों का निर्माण किस प्रकार किया जाता है यह भी इसके अध्ययन क्षेत्र का प्रमुख बिंदु है। नए शब्दों के निर्माण के अतिरिक्त समय के साथ–साथ शब्दों के रूपों में होने वाले परिवर्तन को भी विश्लेषण रुपविज्ञान में किया जाता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शब्द एवं उसके रूपों में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन एककालिक (Synchronic) एवं बहुकालिक (Diachronic) दोनों ही तरीके से किया जाता है। रुपिमो के प्रयोग से शब्दों में होने वाले ध्वन्यात्मक परिवर्तन का भी अध्ययन इसके अंतर्गत किया जाता है जिसे रुपविज्ञान में 'रुपस्वनिमविज्ञान' या अंग्रेजी में 'Morphophonemics' के नाम से जानते हैं।

इस प्रकार भाषाविज्ञान की वह शाखा जिसमे हम रूपिम, रूप, संरूप, शब्द, पद, रुपस्वनिमिक परिवर्तन इत्यादि का विस्तारपूर्वक तथा व्यवस्थित रूप से अध्ययन करते हैं उसे रुपविज्ञान या पदविज्ञान के नाम से जाना जाता है।

8.2.1 रुपिम, रूप, एवं संरूप की अवधारणा

रुपिम (Morpheme)

भाषा की सबसे छोटी सार्थक या अर्थधारक ईकाई (जिसका और अधिक खण्डन संभव न हो) को रूपिम कहते हैं। Bloch, एवं Trager () ने रूपिम की परिभाषा इस प्रकार दी है– "Any form, whether free or bound, which can be divided into smaller meaningful parts is a morpheme". R.H. Robins (1967: 202) के अनुसार "Minimal grammatical units are called morphemes". रूपिम की इस परिभाषा को हिंदी एवं अंग्रेजी दोनों ही भाषा के शब्दों के द्वारा समझा जा सकता है। अंग्रेजी भाषा के शब्द -'unhappy' को अगर हम छोटे टुकड़े में विभाजित करे तो हम इस शब्द को 'un–' एवं 'happy' दो सार्थक इकाईयों में बाँट सकते है और दोनों ही सार्थक इकाई इसलिए है क्योंकि दोनों का ही अर्थ निकलता है। इन दोनों इकाई को हम और छोटे टुकड़े में बाँट नहीं सकते है क्योंकि बटने के बाद यह दोनों इकाई सार्थक नहीं रह पायेगा अर्थातः इनका कोई अर्थ नहीं निकल पायेगा। इस प्रकार ये दोनों ही इकाई –'un' एवं 'happy' सबसे छोटी अर्थधारक इकाई होने के कारण रूपिम है। ठीक इसी प्रकार हिंदी के शब्द –'सफलता' को भी दो छोटे सार्थक टुकड़ों–'सफल' एवं 'ता' में बाँटा जा सकता है और इनका पुनः खण्डन संभव नहीं है। इस प्रकार ये दोनों ही लघुत्तम सार्थक इकाई होने के कारण रूपिम है।

इसी क्रम में यह ध्यान देने योग्य बात है कि अंग्रेजी के शब्द 'unhappy' में 'un' एवं 'happy' दो अलग–अलग रूपिम है परंतु अगर हम सिर्फ 'happy' शब्द को ही ले तो यह स्पष्ट है कि इस शब्द में सिर्फ एक ही रूपिम है। अतः इस बात से यह साबित होती है कि किसी भी शब्द की संरचना में कम से कम एक रूपिम का होना अनिवार्य है यानि कोई भी ऐसा शब्द नहीं होगा जिसमे रूपिम न हो। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि शब्द की संरचना में कम से कम एक रूपिम या एक से अधिक रूपिम हो सकता है और शब्द अलग–अलग प्रकार के रूपिम के मेल से बना हो सकता है। रूपिम के प्रकार एवं रूपिम के आधार पर शब्द संरचना की जानकारी अगले खण्ड में दी गयी है।

रूप (Morph)

किसी भी रुपिम की भौतिक स्वरुप (Physical form) को रूप (Morph) कहा जाता है। यानि रूप एक मूर्तवान इकाई है जिसका प्रयोग वक्ता अपनी भाषा में प्रयोग करता है। जिस प्रकार स्वनिम एक मानसिक संकल्पना है तथा इसका भौतिक स्वरुप स्वन (Phone) है ठीक उसी प्रकार रूपिम भी एक मानसिक संकल्पना है तथा इसका भौतिक स्वरुप रूप (Morph) है। यानि जब हम शब्दों का प्रयोग वाक्य निर्माण में करते है तो शब्दों का प्रयोग रूपों या पदों के रूप में किया जाता है जिसका हम उच्चारण करते है और जब हम शब्दों का विभाजन करके छोटे अर्थवान इकाई के रूप में बाँट देते है तो वह रूपिम कहलाता है न की रूप। यह भी ध्यान देने योग्य बात है की प्रत्येक रूप किसी न किसी खास रूपिम को प्रस्तुत (represent) करती है परन्तु यह जरुरी नहीं की प्रत्येक रूपिम का अपना रूप हो। संभव है कि दो रूपिम भी एक ही रूप के द्वारा प्रस्तुत किये जाएँ जैसे कि अंग्रेजी के शब्द 'deer' एवं 'sheep' को जब हम बहुवचन (plural) में बदलते है तो बहुवचन में बदलने के बाद भी उसका वही स्वरुप रहता है बदलता नहीं है अर्थात बहुवचन रूपिम के कारण अर्थ में तो परिवर्तन हो जाता है परंतु भौतिक रूप से विद्यमान न होने के कारण उसके रूप या उच्चारिकी स्वरुप में कोई परिवर्तन नहीं होता है जिसके कारण इन दोनों शब्दों का रूप एकवचन एवं बहुवचन दोनों ही स्थिति में एक जैसा ही रहता है। इस प्रकार इस

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बहुवचन रूपिम का अपना कोई भौतिक रूप नहीं है और इस प्रकार के रूपिम को रुपविज्ञान में शून्य रूपिम के नाम से जाना जाता है अर्थात् रूपिम का उच्चारिकी स्वरुप ही रूप कहलाता है।

संरूप (Allomorph)

ऊपर हमने यह पढ़ा है कि रूपिम के भौतिक स्वरुप को रूप या मॉर्फ (Morph) कहते हैं इससे यह बात स्पष्ट हो है कि प्रत्येक रूपिम के रूप होते हैं परन्तु जब एक ही रूपिम के एक से अधिक रूप भेद (Variant) हो तो उसे उस रूपिम का 'संरूप' या 'अलोमॉर्फ' (Allomorph) कहेंगे। यह भी महत्वपूर्ण है कि एक रूपिम के अनेक संरूप भले हो सकते हैं परन्तु उनके सभी संरुपों के द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति एक ही होती है या यूँ कहे कि रूपिम का प्रकार्य समान ही रहता है पर रूपिम का सिर्फ भौतिक स्वरुप बदल जाता है। किसी भी रूपिम का भिन्न संरूप में बदलना इस बात पर निर्भर करता है कि रूपिम जिस शब्द के साथ लग रहा है उस शब्द की स्वनिमिक एवं रुपिमिक संरचना क्या है? यानि जिस शब्द के साथ रूपिम प्रयुक्त किया जा रहा है उस शब्द की स्वनिमिक या रुपिमिक वातावरण कैसा है?

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि 'संरूप वास्तव में एक ही रूपिम के अनेक रूप हैं' और यह पूर्ण रूप से भाषा में प्रयुक्त शब्द की स्वन्यात्मक (Phonological) एवं रूपात्मक (Morphological) परिस्थितियों (Conditioning) पर निर्भर करता है।

आइये, अब हम संरूप को उदाहरण के साथ समझने की कोशिश करते हैं। हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषा में बहुबचन बनाने वाले रूपिम के कई संरूप देखने को मिलते हैं। आइये, पहले हिंदी भाषा में प्रयुक्त बहुवचन बनाने वाले रूपिम के संरुपों की चर्चा करते हैं फिर हम आपको अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त होने वाले बहुवचन के संरुपों को उदाहरण के साथ समझायेंगे।

प्रायः यह देखा गया है कि हिंदी भाषा में संज्ञा शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए ए, एं, ओ, ओं, आँ इत्यादि का प्रयोग कर लड़का–लड़के, माता–माताएं, बालक–बालकों, चिड़िया–चिड़ियाँ इत्यादि जैसे बहुवचन शब्द बनाएँ जाते हैं। वस्तुतः ये बहुवचन बनाने वाले एक ही रूपिम – {–ओं} के ये भिन्न रूप या संरूप हैं जिनका प्रयोग शब्दों के विभिन्न परिवेश या परिपूरक वितरण के आधार पर किया जाता है। अन्य सभी के जगह सिर्फ {–ओं} को ही रूपिम इसलिए मान लिया गया है क्योंकि बहुवचन बनाने की प्रक्रिया में {ओं} का ही सबसे अधिक प्रयोग होता है और इसके संरूपों का प्रयोग इस के इत्तर भिन्न परवेश में होता है जिसे परिपूरक वितरण कहा जाता है। आइये हिंदी भाषा में बहुवचन बनाने वाले रूपिम – {–ओं} के संरुपों की वितरण को देखते है:

	संरूप	**शब्द**		**परिपूरक वितरण**
	[ए]	लड़का–लड़के	–	आकारान्त पुल्लिंग अविकारी रूपों के साथ
	[एं]	बहु– बहुएं	–	आ, उ,ऊ, औ अंत वाले शब्दों के साथ
{–ओं}	[ओ]	बहन–बहनो	–	संबोधन बहुवचन में
	[ओं]	मित्र–मित्रों	–	सभी शब्दों से बहुवचन में
	[आं]	लड़की–लड़कियां	–	इकारान्त, ईकारान्त रूपों के साथ
	[ø]	कवि–कवि	–	अविकारी व्यंजनान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त पुल्लिंग रूपों के साथ

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ऊपर आप देख सकते है कि बहुवचन रूपिम –/ओं/के छः संरूप दिखाई दे रहे हैं जिनका प्रयोग अलग–अलग परिवेश या रुपिमीय परिस्थिति के अनुरुप दर्शाया गया है।

हिंदी भाषा की तरह ही अंग्रेजी भाषा में भी बहुवचन बनाने वाले रूपिम के कई संरूप दिखाई देते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि अंग्रेजी भाषा में बहुवचन बनाने के लिए शब्दों के साथ '-s' तथा '–es' रूपिम का प्रयोग कर बहुवचन शब्द बनाए जातें हैं जैसे कि 'rats', cats, dogs, churches इत्यादि। बहुवचन रूपिम '-s' तथा '–es' के तीन संरूप (Allomorphs) – [s], [z] एवं [iz] है जो कि शब्दों के अलग – अलग परिवेश के अनुसार घटित होते हैं। इसका विवरण निचे दिया गया हैः–

	Allomorphs	Words	Morph
	[S]	Ca*t*+s	कैट्स
{-S}	[Z]	Do*g*+z	डॉग्ज
(Plural morpheme)	[IZ]	Chur*ch*+iz	चर्चिज

अंग्रेजी के बहुवचन के संरुपों का वितरण इस प्रकार है :–

i) [s] अंग्रेजी के अघोष ध्वनियों जैसे कि -[p], [t], [k], इत्यादि से समाप्त होने वाले शब्दों के साथ घटित होता है।

ii) [z] अंग्रेजी के घोष ध्वनियों जैसे कि – [b, [d], [g] इत्यादि से समाप्त होने वाले शब्दों के साथ घटित होता है।

iii) [iz] अंग्रेजी के संघर्षी ध्वनियों जैसे कि – [s], [z], [sh], [ch] इत्यादि के साथ समाप्त होन वाले शब्दों के साथ घटित होता है।

इस प्रकार आप देख सकते है कि ऊपर दिए गए अंग्रेजी भाषा के संरुपो के वितरण में दर्शाए गए शब्द 'cat' का जब हम बहुवचन बनाते हैं तो इसके साथ संरूप-[s] घटित होता है क्योंकि 'cat' शब्द में शब्द का अंत [t] ध्वनि से हुआ है जो की एक अघोष (voiceless) ध्वनि है। इसके विपरीत 'Dog' शब्द की समाप्ति [g] ध्वनि से रही है जो की एक घोष ध्वनि है इसी कारणवश उस शब्द में संरूप - [z] घटित हो रही है। ठीक उसी प्रकार 'Church' शब्द की समाप्ति [ch] ध्वनि से हो रही जो कि एक संघर्षी ध्वनि है। इसी कारणवश इस ध्वनि के साथ संरूप - [iz] घटित हो रही है।

ऊपर दिए गए तथ्यों से इस बात का पता चलता है कि एक रूपिम के अनेक रूप हो सकते हैं जिसे हिंदी में 'संरूप' एवं अंग्रेजी में 'Allomorph' कहते है और सबसे अधिक ध्यान देने योग्य यह बात है कि सभी संरुपों का वितरण एक निश्चित परिवेश में ही संभव है और सभी संरूप आपस में समानार्थी होते है जो रूपिम के वास्तविक अर्थ या प्रकार्य को परिलक्षित करते हैं।

रूपिम, रूप तथा संरूप की अवधारणा को समझने के बाद अगले खंड में आप रूपिम के प्रकार को विस्तारपूर्वक जान पाएँगे।

8.2.2 रुपिम के प्रकार

रूपिम की परिभाषा से आप अवगत हो चुके हैं और यह भी देख चुके है कि अंग्रेजी के 'unhappy' तथा हिंदी के 'सफलता' शब्दों को छोटी–छोटी सार्थक इकाइयों में बाँटने पर 'un' एवं 'happy' तथा 'सफल' एवं ता' जैसे अलग–अलग प्रकार के रूपिम

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

दिखाई देते हैं जिनके बारे में विस्तारपूर्वक जानना अति आवश्यक है। रूपिम को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा गया है:–

रुपिम के प्रकार

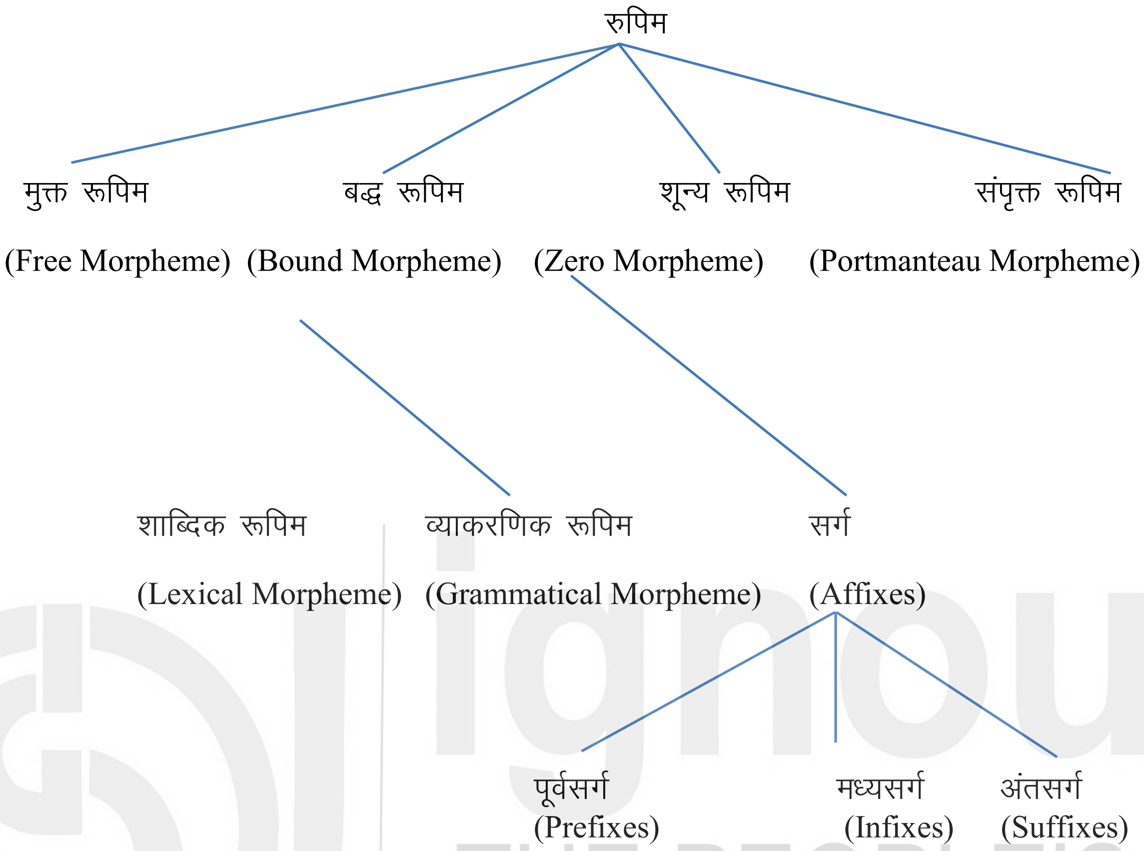

सर्ग को प्रकार्य के आधार पर दो भागों में बाँटा गया है :–

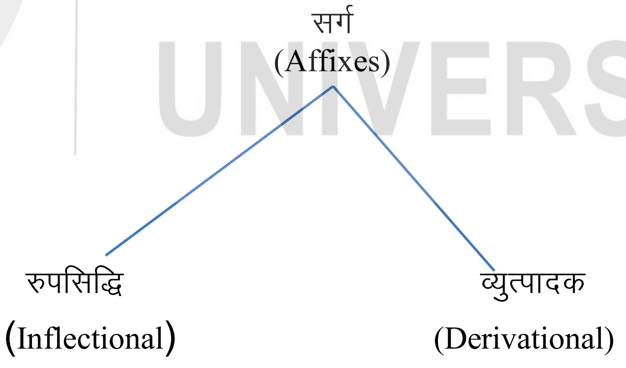

मुक्त रूपिम (Free Morpheme)

ऐसे रूपिम जो वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयोग किये जा सके उसे मुक्त रूपिम कहते हैं। हिंदी के शब्द -बालक, घर, पुत्र, कलम, राम, उसे, को तथा अंग्रेजी के शब्द - Pen, Write, eat, Sleep, Go, Happy, on, at, in इत्यादि मुक्त रूपिम के उदाहरण है। आप देख सकते हैं कि ये सभी लघुत्तम सार्थक एवं अविभाज्य इकाई है जिनका प्रयोग वाक्य में स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है। एक बात और महत्वपूर्ण है कि ये सभी शब्द है क्योंकि इन सभी का सम्पूर्ण अर्थ निकलता है और इन सभी का अर्थ अगर हम शब्दकोश में ढूंढे तो मिल जायेगा। अतः मुक्त रूपिम को शब्द कह सकते हैं। इसके अतरिक्त यह महत्वपूर्ण है कि मुक्त रुपिम के साथ अन्य मुक्त रूपिम एवं बद्ध रूपिम लगाकर एक नए शब्द की संरचना की जा सकती है।

मुक्त रूपिम को दो भागो में बाँटा गया है – शाब्दिक रूपिम एवं व्याकरणिक रूपिम

शाब्दिक रूपिम (Lexical Morpheme)

ऐसे मुक्त रूपिम जो केवल अर्थ का बोध कराता हो उसे शाब्दिक रूपिम या अंग्रेजी में लेक्सिकल मोर्फिम के नाम से जानते है। उदाहरण के तौर पर उपर दिए गए शब्दों में बालक, घर, पुत्र, कलम, राम, Pen, Write, eat, Sleep, Go, इत्यादि शाब्दिक रूपिम (Lexical Morpheme) है। ऐसे रूपिमों की संख्या किसी भी भाषा में लाखो एवं हजारों में होती है जिनका शब्दकोश में संकलन किया जाता है। शब्दिक रूपिमों की संख्या सीमित नहीं होती हैं। इसे मुक्त श्रेणी (Open Class) के रूपिम भी कहे जाते हैं क्योंकि ऐसे रूपिम की संख्या में दिन प्रतिदिन बढ़ोतरी होती रहती है। भाषाविज्ञान की हिंदी पुस्तकों में ऐसे रूपिमों को अर्थदर्शी रूपिम नाम दिया गया है।

व्याकरणिक रूपिम (Grammatical Morpheme)

ऐसे मुक्त रूपिम जो अर्थ का बोध न करा कर व्याकरणिक संबंधों या व्याकरणिक प्रकार्यों का बोध कराता करता हो उसे व्याकरणिक या प्रकार्यात्मक (Functional) रूपिम के नाम से जानते हैं। अंग्रेजी भाषा के a, an, the, at, on, in, etc. तथा हिंदी भाषा के ने, को, से, में इत्यादि परसर्ग ऐसे रुपिमो की श्रेणी में आते हैं क्योंकि ऐसे रूपिम संज्ञा, सर्वनाम एवं क्रिया इत्यादि के साथ प्रयुक्त होकर वाक्य में व्याकरणिक संबंधों को दर्शाता है। ऐसे रूपिमों की संख्या सीमित होती है यानि दिन प्रतिदिन बढ़ोतरी नहीं होती अतः इसे बंद श्रेणी (Closed Class) के रूपिम कहे जाते हैं। भाषाविज्ञान की हिंदी पुस्तकों में ऐसे रूपिमों को समबन्धदर्शी रूपिम नाम दिया गया है। सम्बन्धदर्शी रूपिम के रूप में भाषाविज्ञान की हिंदी पुस्तकों में बद्ध रूपिमों को भी समाहित कर लिया गया है पर यहाँ हमने बद्ध रूपिम को अलग दिखाया है और व्याकरणिक रूपिम या प्रकार्यात्मक (Functional) रूपिम को मुक्त रूपिम की श्रेणी में ही रखा है।

बद्ध रूपिम (Bound Morpheme)

ऐसे रूपिम जिनका मुक्त रूपिम की भाँति अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है तथा हमेशा स्वतंत्र रूपिम के साथ ही प्रयुक्त होते हैं उसे बद्ध रूपिम (Bound Morpheme) कहते हैं। ऐसे रूपिम मुक्त रूपिम के पूर्व, मध्य अथवा अंत में लगाये जाते हैं। बहुवचन, लिंग, तथा काल के लिए प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय तथा सभी प्रकार के नए शब्द बनाने वाले उपसर्ग एवं प्रत्यय (सर्ग) बद्ध रूपिम कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी भाषा के शब्द 'सुंदरी' जो कि 'सुन्दर्‌ + ई' से बना है में 'ई' बद्ध रूपिम है और सुन्दर एक मुक्त रूपिम। ठीक उसी प्रकार अंग्रेजी के शब्द 'beautiful' जो कि 'beauty+ful'से बना है में 'ful' बद्ध रूपिम है और 'beauty' एक मुक्त रूपिम।

सर्ग

पूर्वसर्ग (Prefixes)

ऐसे बद्ध रूपिम जो मुक्त रूपिम के पूर्व में जुड़ते है उसे पूर्वसर्ग (Prefixes) कहते हैं। हिंदी भाषा में इन्हें उपसर्ग के नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी भाषा के शब्द 'unfortunate', 'impossible', और 'irresponsible' में un-, im-, ir- तथा हिंदी भाषा के शब्द 'असंभव', 'अपमान', तथा 'कुपुत्र' में अ–, अप– एवं कु– पूर्वसर्ग ((Prefixes) के उदाहरण है।

मध्यसर्ग (Infixes)

ऐसे बद्ध रूपिम जो मुक्त रूपिम के मध्य में जुड़ जाते हैं उन्हें मध्यसर्ग (Infixes) कहते हैं। मध्य सर्गों की संख्या बहुत कम है। मध्यसर्ग का प्रयोग मुंडा, अरबी, लैटिन तथा हिब्रू इत्यादि भाषाओं में देखा जाता है। भारतीय भाषा मुंडा में '–प–' मध्यसर्ग का उदाहरण है। उदाहरणस्वरुप 'दल' शब्द जिसका अर्थ होता है – 'मारना' में '–प–' मध्यसर्ग लगाकर नया शब्द 'दपल' बना दिया जाता है जिसका अर्थ होता है 'परस्पर मारना'। फिलिपींस की राज–भाषा 'टेगलॉग' (Tagalog) में भी मध्यसर्ग (Infixes) का प्रयोग देखा जाता है। इस भाषा में मध्यसर्ग '–um–' लगाकर नए शब्द बनाए जाते हैं जैसेः–

Sulat	's-*um*-ulat'
(write)	(one who wrote)
लिखना	जिसने लिखा

(मुंडा भाषा का उदाहरण भोलानाथ की पुस्तक – 'भाषाविज्ञान' से ली गई है तथा 'टेगलॉग' (Tagalog) भाषा में प्रयुक्त मध्यसर्ग का उदाहरण Ingo Plag et. al. (2007) द्वारा रचित पुस्तक 'Introduction to English Linguistics' से ली गई है।)

अंतसर्ग (Suffixes)

ऐसे बद्ध रूपिम जो मुक्त रूपिम के अंत में जुड़ते हैं उन्हें अंतसर्ग (Suffixes) कहा जाता है। अंतसर्ग का प्रयोग प्रायः सभी भाषाओं में देखा जाता है। हिंदी भाषा के शब्द 'मानवता', 'हिम्मतवाला', और 'खाया' तथा अंग्रेजी के शब्द 'playing', 'played', एवं 'management' में क्रमशः –ता, –वाला, –या, –ing, –ed, एवं –ment इत्यादि सभी अंतसर्ग है। हिंदी व्याकरण में अंतसर्ग को प्रत्यय भी कहा जाता है।

सर्ग को प्रकार्य के आधार पर दों भागों में बाँटा गया है – रुपसिद्धि एवं व्युत्पादक सर्ग के रूप में। इसका विस्तारपूर्वक विवरण अगले खण्ड में दिया गया है।

शून्य रूपिम (Zero Morpheme)

शून्य रूपिम ऐसे रूपिम को कहते हैं जिनका कोई भौतिक स्वरुप या रूप (Morph) मौजूद नहीं होता है यानि ऐसे रूपिम मुक्त रूपिम के साथ जुड़कर भी दिखाई नहीं देता है। इसकी अनुभूति सिर्फ अर्थ के स्तर पर महसूस की जाती है। हम जानते हैं कि हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा में बहुवचन बनाने के लिए किसी भी मुक्त रूपिम के साथ बहुवचन बनाने वाले बद्ध रूपिम लगाये जाते हैं जो भौतिक रूप से मुक्त रूपिम के साथ लगा हुआ दिखाई देता है परंतु अंग्रेजी भाषा में जब 'fish', 'sheep' एवं 'deer' जैसे एकवचन शब्दों का बहुवचन बनाते है तो उसका बहुवचन भी 'fish', 'sheep' एवं

'deer' ही रहता है यानि इनके स्वरुप में कोई अंतर नहीं होता है। इसका मतलब यह है कि वहुवचन बनाने वाला रूपिम लगा हुआ है जिसका अर्थ है 'एक से अधिक' परन्तु वे रूपिम भौतिक स्वरुप में शब्द के साथ विद्यमान नहीं है यानि **शून्य** में है इसीलिए ऐसे रूपिमों को शून्य रूपिम कहते हैं। नीचे दिए गए उदाहरण में इसे और अच्छे से समझा जा सकता हैः–

एकवचन		बहुवचन बनाने वाले शून्य रूपिम		बहुवचन
Sheep (एक भेड़)	+	{ **शून्य** रूपिम}	=	Sheep (एक से अधिक भेड़)
Deer (एक हिरण)	+	{ **शून्य** रूपिम}	=	Deer (एक से अधिक हिरण)
Fish (एक मछली)	+	{ **शून्य** रूपिम}	=	Fish (एक अधिक मछली)

उपरोक्त उदाहरण में आप देख सकते हैं कि शून्य रूपिम लगने के पश्चात शब्द एकवचन से बहुवचन में बदल गए हैं और अर्थ में भी परिवर्तन हुआ है परन्तु शब्दों के रूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः इस प्रकार के रूपिम जिनका भौतिक स्वरुप नहीं होता है उसे शून्य रूपिम कहते हैं।

संपृक्त रूपिम (Portmanteau Morpheme)

ऐसे बद्ध रूपिम जो एक से अधिक व्याकरणिक अर्थ या प्रकार्य की अभिव्यक्ति करते हो उसे संपृक्त रूपिम (Portmanteau Morpheme) कहते हैं। ऐसे रूपिम अंग्रेजी भाषा में बहुत ही स्पष्ट तरीके से दिखाई देते हैं। नीचे दिए गए उदाहरण में देखिए किस प्रकार अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त बद्ध रूपिम एक से अधिक व्याकरणिक अर्थों की अभिव्यक्ति कर रहा हैः–

Ram　　　go*es*　　　to the market.

Noun　　　V-*es*

-3 person　　　-3 person　　　(तृतीय पुरुष)

-Singular　　　- Singular　　　(एकवचन)　Present Tense　(वर्तमान काल)

यहाँ क्रिया 'go' के साथ बद्ध रूपिम '-es' लगकर कर्ता के बारे में बताता है कि कर्ता – तृतीय पुरुष, एकवचन में है एवं क्रिया वर्तमान काल में है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि पुरुष, वचन एवं काल के लिए अलग–अलग बद्ध रूपिम क्रिया के साथ प्रयुक्त न हो कर सिर्फ एक ही बद्ध रूपिम क्रिया के साथ लगा है जो एक से अधिक व्याकरणिक प्रकार्य को बता रहा है अतः एस प्रकार के बद्ध रूपिम को संपृक्त रूपिम (Portmanteau Morpheme) कहते हैं।

8.2.3 रुपसिद्धि (रुपसाधक) एवं व्युत्पादक रूपिम

सभी बद्ध रूपिम को सर्ग (Affixes)कहते हैं एवं सभी सर्ग को दो वर्गों बाँटा गया है – रुपसिद्धि (रुपसाधक) एवं व्युत्पादक सर्ग या रूपिम के रूप में और ये आपस में एक दूसरे से भिन्न हैं। ऐसे सर्ग/बद्ध रूपिम जिनका प्रयोग मुक्त रूपिम के साथ सिर्फ व्याकरणिक प्रकार्य जैसे कि पुरुष, वचन, काल, लिंग, तथा पक्ष इत्यादि को बदलने के लिए किया जाता है उसे हम रुपसिद्धि या रुपसाधक रूपिम के नाम से जानते है। ये मुक्त रूपिम के अंत में ही लगते है यानि रुपसिद्धि रूपिम अंतसर्ग ही होते हैं। अंग्रेजी के शब्द – 'boys' और 'walked' में प्रयुक्त *'–s'* एवं *'–ed'* एवं हिंदी के शब्द –

'खाया' एवं 'खाएगा' में प्रयुक्त अंतसर्ग *'–या'* एवं *'–एगा'* रुपसाधक रूपिम के उदाहरण है। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी शब्द में रुपसिद्धि रूपिम एक बार लग जाने के बाद कोई और रूपिम नहीं लगता है अतः प्रत्ययिकरण की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है यानि एक रुपसिद्धि रूपिम लगाने के बाद दूसरा नहीं लगा सकते हैं।

इसके विपरीत व्युत्पादक रूपिम ऐसे बद्ध रूपिम या सर्ग है जिनका प्रयोग व्याकरणिक प्रकार्य को दर्शाने में न कर नए शब्द की व्युत्पत्ति या निर्माण में किया जाता है। ये मुक्त रूपिम के पहले एवं अंत में जुड़ते है इसलिए व्युत्पादक रूपिम मुख्यतः पूर्वसर्ग एवं अंतसर्ग होते हैं। इस प्रकार के रूपिमों की संख्या लगभग सभी भाषाओं में अत्यधिक होती है। अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त '-hood' , '-ment', '-im', '-un' इत्यादि व्युत्पादक रूपिम/सर्ग के उदाहरण है जिनका प्रयोग कर 'child*hood*', 'achieve*ment*', '*im*possible', और 'undo' जैसे शब्द बनाये जाते हैं। व्युत्पादक रूपिम को किसी भी मुक्त रूपिम में लगाने के बाद पुनः प्रत्ययिकरण की प्रक्रिया संभव है यानि किसी भी मुक्त रूपिम के साथ एक से अधिक पूर्वसर्ग एवं अंतसर्ग लगाये जा सकते हैं। अतः शब्द व्युत्पत्ति में इसका अधिक योगदान होने के कारण इसे व्युत्पादक रूपिम कहा जाता है।

8.2.4 रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया

रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया से आशय है शब्दों का रुपिमिक विश्लेषण यानि विभिन्न प्रकार के शब्दों में जुड़े हुए रूपिमों का शब्दों से विखंडन करना एवं वे किस प्रकार के रूपिम है इसकी पहचान करना। शब्दों की रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया या तो वृक्ष–आरेख (tree diagram) या ब्रेकेट्स (brackets) के द्वारा की जाती है। यहाँ हिंदी भाषा के कुछ शब्द लिए गए हैं एवं उन सभी का रुपिमिक विश्लेषण कर के दिखाया गया है:

1. सपूत   2. रेलगाड़ी

3. सामाजिकता

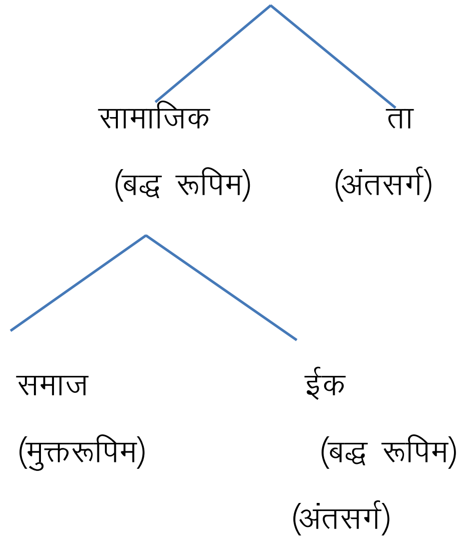

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ऊपर दिए गए शब्दों के रुपिमिक विश्लेषण में आप देख सकते है कि पहला शब्द 'सपूत' में दो रूपिम है –मुक्त रूपिम एवं बद्ध रूपिम जिसमे बद्ध रूपिम पूर्व सर्ग है। दूसरे शब्द 'रेलगाड़ी' में दो मुक्त रूपिम है एवं तीसरे शब्द 'सामाजिकता' में तीन रूपिम है जिनमे एक मुक्त रूपिम है और दो बद्ध रूपिम। इनमे दोनों ही बद्ध रूपिम अंतसर्ग है।इस प्रकार आप किसी भी शब्द में प्रयुक्त रूपिम को शब्द से अलग करने के लिए ये रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया को अपना सकते हैं।

8.3 शब्द एवं पद

आमतौर पर शब्द की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जाती है – "दो या दो से अधिक ध्वनियों के मेल से बना वह सार्थक खंड जिसका कुछ अर्थ निकले उसे शब्द कहते हैं।" कामता प्रसाद गुरु के अनुसार "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं जैसे लड़का, जा, छोटा, में, धीरे, परन्तु इत्यादि।" शब्द की परिभाषा में कामता प्रसाद गुरु के अनुसार 'स्वतंत्र' शब्द रखने का कारण यह है कि भाषा में कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती है जो स्वयं सार्थक नहीं होती है परन्तु शब्द के साथ जब वह जोड़ी जाती है तब वह सार्थक होती है और ऐसी परतंत्र ध्वनियों को वे 'शब्दांश की परिभाषा देतें हैं और कहते हैं को जो शब्दांश शब्द के पहले जोड़ा जाता है ,उसे 'उपसर्ग' एवं जो शब्द के अंत में जोड़ा जाता है उसे 'प्रत्यय' कहते हैं। शब्द के बारे में विस्तारपूर्वक बताते हुए कामता प्रसाद गुरु इस बात पे जोर देते है कि "हिंदी में शब्द का अर्थ बहुत ही संदिग्ध है"। इसको समझाने के लिए वे एक वाक्य लेते है – "अब तो तुम्हारी चाही बात हुई" और कहते है कि एस वाक्य में 'तुम्हारी' भी शब्द है और जिस 'तुम' से यह शब्द बना है वह 'तुम' भी शब्द है। इसी प्रकार 'मन' और 'चाही' दो अलग–अलग शब्द है परंतु दोनों मिलकर 'मनचाही' एक नया शब्द बन जाता है

इस प्रकार कामता प्रसाद गुरु के द्वारा दिए गए शब्द की परिभाषा एवं उनके लक्षणों के बारे में विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि "ध्वनि या अक्षरों के मेल से बनी हुई स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई" जो की अपने मूलरूप में हो या शब्दांश यानि उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर बने हुए हो उसे शब्द कहेंगे।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार शब्द की परिभाषा इस प्रकार है :–

भोलानाथ तिवारी के अनुसार – "शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुत्तम स्वतंत्र इकाई है।" इस परिभाषा में शब्द के सम्बन्ध में भोलानाथ तिवारी दो बातों पर जोर देतें हैं कि – (i) शब्द अर्थ के स्तर की लघुत्तम इकाई है और इसका एक स्पष्ट अर्थ होता है (ii) यह एक स्वतंत्र इकाई है जिसे प्रयोग में एवं अर्थ की अभिव्यक्ति में किसी और की सहायता की जरुरत नहीं होती है।

कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार "सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते है" उनके अनुसार शब्द को मूलरूप में समझना चाहिए। संस्कृत में इसे 'प्रातिपदिक' या 'प्रकृति' कहते हैं।

अतः शब्द के मूलरूप को ही व्यकाराणाचार्य एवं भाषावैज्ञानिक ने शब्द माना है परन्तु उपसर्ग एवं प्रत्यय लगा कर के भी नए शब्दों की संरचनाएँ की जाती है अतः शब्द की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती है।

अब आइये आपको पद के बारे में संक्षिप्त में समझाएँः–

पद के सम्बन्ध में यह बात कही गई है कि शब्द का प्रयोग वाक्य में मूलरूप में नहीं किया जाता है। शब्द का प्रयोग जब वाक्य में किया जाता है तो शब्द के साथ सम्बन्ध तत्व या कुछ अर्थ बोधक प्रत्यय इत्यादि लगाये जाते है जिससे शब्द अपने मूलरूप में न रह कर पद में बदल जाता है।

'पद' की परिभाषा भोलानाथ तिवारी कुछ इस प्रकार देते हैं:– "शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बना लेने पर उसे 'पद' की संज्ञा दी जाती है।" ठीक उसी प्रकार कपिलदेव द्विवेदी जी का मानना है कि –"कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बन जायेगा, उसका प्रयोग नहीं हो सकता है। पद बनाने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थो के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इनके लगाने पर वह शब्द प्रयोग के योग्य होता है।" इनके अनुसार संस्कृत भाषा में शब्द के मूलरूप के साथ सुप् एवं तिङ् का प्रयोग कर पद बनाये जाते हैं एवं हिंदी भाषा में कारक चिन्ह जैसे कि – ने, को, से, पर इत्यादि एवं क्रिया में कालवाचक चिन्ह जैसे ता, ते, ती, गा, गे गी, इत्यादि लगाकर पद बनाये जाते हैं।

अतः इस प्रकार "वाक्य में प्रयुक्त शब्द को ही पद कहते हैं" परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि सभी भाषाओँ की अपनी विशेषता एवं संरचनाएँ होती है इसलिए विश्व की अनेक भाषाओँ में शब्द एवं पद में कोई अंतर नहीं है।

8.3.1 शब्द बनाम रूपिम

रूपिम की परिभाषा के अनुसार सभी मुक्त रूपिम को शब्द कह सकते हैं क्योंकि यह भाषा की लघुत्तम, सार्थक एवं स्वतंत्र इकाई है जिसका प्रयोग वाक्य में स्वतंत्र रूप से किया जाता है। बद्ध रूपिम को शब्द नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसका प्रयोग वाक्य में स्वतंत्र रूप से संभव नहीं है। उदाहरणस्वरुप 'महानता' शब्द में 'महान' शब्द है परन्तु 'ता' जो कि एक बद्ध रूपिम है या एक प्रत्यय है वह एक शब्द नहीं हो सकता है क्योंकि अर्थ की दृष्टि से यह लघुत्तम इकाई होने पर भी इसका प्रयोग वाक्य में स्वतंत्र रूप से संभव नहीं है एवं इसके अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए इसका मुक्त रूपिम के साथ लगना अनिवार्य है। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि मुक्त रूपिम के साथ मुक्त या बद्ध रूपिम का प्रयोग करके नए शब्दों की संरचना की जा सकती है जैसे कि मुक्त रूपिम – 'विद्यालय' जो कि एक शब्द भी है में जब हम मुक्त रूपिम – 'विश्व–' लगायेंगे तो एक नया शब्द 'विश्वविद्यालय' बनेगा और जब हम मुक्त रूपिम 'महान' में बद्ध रूपिम '–ता' लगायेंगे तो भी एक नया शब्द 'महानता' बनेगा। अतः रूपिम का प्रयोग कर नए शब्द बनाये जा सकते हैं।

इस प्रकार उपर दिए गए उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक रूपिम शब्द नहीं हो सकता और प्रत्येक शब्द में कम से कम एक मुक्त रूपिम का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त शब्द में एक से अत्यधिक रूपिम भी लगे हो सकते हैं।

8.3.2 शब्द के प्रकारः रुपिमिक संरचना के आधार पर

आप यह जानते हैं कि शब्द रचना के आधार पर शब्द के मूलतः तीन भेद – रूढ़, यौगिक एवं योगरूढ़ होते हैं तथा शब्द की उत्पत्ति के आधार पर शब्दों को तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशज में बाँटा गया है। इनकी जानकारी आप व्याकरण की पुस्तक से भी प्राप्त कर सकते हैं परन्तु मैं आपको यहाँ रुपिमिक संरचना के आधार पर शब्दों का किस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है यह बताने का प्रयास करूँगा।

रुपिमिक संरचना के आधार पर शब्दों को तीन भागों में बांटा जा सकता है – सरल, संयुक्त एवं जटिल शब्द। आइये इनके बारे में हम विस्तार से जानने की कोशिश करें:–

सरल शब्द (Simple Word)

ऐसे शब्द जो सिर्फ एक मुक्त रूपिम से बना हो या जिनमे सिर्फ एक ही मुक्त रूपिम हो उसे सरल शब्द कहेंगे जैसे कि किताब, कुर्सी, मेज, घर, pen, school, knife इत्यादि।

संयुक्त शब्द (Complex Word)

ऐसे शब्द जो मुक्त रूपिम एवं बद्ध रूपिम के संयोग से बना हो या जिनमे कम से कम एक मुक्त रूपिम एवं एक बद्ध रूपिम हो या उसमे मुक्त रूपिम के साथ एक से अधिक बद्ध रूपिम लगा हो उसे संयुक्त शब्द कहेंगे जैसे कि सफलता, मानवता, धैर्यवान, गुणवान, कार्यालयीन, boyhood, childish, beautiful, honesty इत्यादि

यौगिक शब्द (Compound Word)

ऐसे शब्द जो कम से कम दो या उससे अधिक मुक्त रूपिम के संयोग से बना हो उसे संयुक्त शब्द कहेंगे जैसे कि रसोईघर, रेलगाड़ी, राजगृह, पतिदेव, राजभवन, blackboard, white house, moonlight, fast-food, mother-in-law इत्यादि।

अतः उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि रुपिमिक संरचना के आधार भी पर शब्दों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है – सरल, संयुक्त एवं जटिल शब्द।

8.3.3 शब्द निर्माण की प्रक्रिया

ऊपर हमने शब्द के बारे में बताया तथा रुपिमिक संरचना के आधार पर शब्दों के भेद भी बताये अब हम आपको शब्द निर्माण की प्रक्रिया से अवगत कराएँगे। शब्द निर्माण की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कर नए शब्दों का निर्माण किया जाता है। नीचे शब्द निर्माण के विभिन्न प्रक्रियाओं के बारे में विस्तारपूर्वक बताया जा रहा है:–

i) प्रत्यययोजन (Affixation)

शब्द निर्माण की ऐसी प्रक्रिया जिसमे नए शब्दों का निर्माण उपसर्ग या प्रत्यय लगाकर किया जाता हो उसे प्रत्यययोजन (Affixation) कहते है। इस प्रक्रिया को दो भागों में बाँटा गया है – उपसर्गीकरण एवं प्रत्ययीकरण। उपसर्ग लगाकर शब्द बनाने को प्रक्रिया को उपसर्गीकरण एवं प्रत्यय लगाकर शब्द बनाने की प्रक्रिया को प्रत्ययीकरण कहते हैं। शब्द निर्माण की यह प्रक्रिया बहुत ही प्रचलित प्रक्रियाओं में से एक है। हिंदी, उर्दू, ।अंग्रेजी एव प्रायः सभी भाषाओँ में शब्द निर्माण की इस प्रक्रिया के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। नीचे दोनों ही प्रक्रियाओं के कुछ उदाहरण हिंदी, उर्दू, एवं अंग्रेजी भाषा से प्रस्तुत किये गए हैं:–

उपसर्गीकरण (Prefixation)

उपसर्ग	**शब्द**	**नए शब्द**
सु–	अवसर, शासन	सुअवसर, सुशासन
अनु–	शासन, उचित	अनुशासन, अनुचित

नि–	डर, रोगी	निडर, निरोगी
प्रति–	कूल, ध्वनि	प्रतिकूल, प्रतिध्वनि
बे–	जुबान, रहम	बेजुबान, बेरहम
dis-	connect, respect	disconnect, disrespect
un-	do, seen	undo, unseen
im-	perfect, balance	imperfect, imbalance
sub-	registrar, committee	subregistrar, sub-committee

प्रत्ययीकरण (Suffixation)

शब्द	**प्रत्यय**	**नए शब्द**
प्र	–अधीन	पराधीन
दिन, दिवा	–कर	दिनकर, दिवाकर
कीट, कफ	–नाशक	कीटनाशक, कफनाशक
अर्थ, मत	–भेद	अर्थभेद, मतभेद
मदद,याद	–गार	मददगार, यादगार
Culture, national	Cultural, national	Look, clock -wise Look wise, clockwise
Strength, broad	-en	strengthen, broaden

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि किस प्रकार शब्दों में उपसर्ग एवं प्रत्यय लगाकर नए शब्दों का निर्माण किया जाता है।

ii) **सामासिकरण (Compounding)**

शब्द बनाने की यह दूसरी सबसे प्रचलित प्रक्रिया है जिसमे दो शब्दों को मिलाकर एक नए शब्द की रचना की जाती है। इस प्रक्रिया में एक ही कोटि या श्रेणी के दो शब्दों को मिलाकर या विभिन्न कोटि के दो शब्दों को मिलाकर एक नए शब्द बनाए जाते हैं। शब्द बनाने की इस प्रक्रिया को सामासिकरण (Compounding) के नाम से जाना जाता है। शब्द बनाने कि यह प्रक्रिया विश्व की लगभग सभी भाषाओँ में देखी जा सकती है। सामासिक प्रक्रिया के द्वारा गठन किये गए हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्दों के उदाहरण इस प्रकार है :–

दशानन, नीलकमल, श्वेताम्बर, परमानन्द, राजपुरुष, माता–पिता, सुख–दुःख, चाय–पानी खाना–पीना, सुबह–शाम इत्यादि सभी शब्द एक ही श्रेणी (संज्ञा + संज्ञा) के दो शब्दों के संयोग से गठन किये गए है परन्तु कुछ शब्द जैसे कि – काला टीका, हरी मिर्च, लाल मिर्च इत्यादि शब्द भिन्न श्रेणी (विशेषण + संज्ञा) के शब्दों के संयोग से मिलकर बनाए गए हैं। अंग्रेजी के शब्द जैसे कि– blackboard, white house , watermelon, football, basketball, armchair, playground, overweight इत्यादि भी सामासिक प्रक्रिया के तहत् बने हुए शब्द के उदाहरण हैं।

iii) पुनरुक्तिकरण (Reduplication)

शब्द निर्माण की वह प्रक्रिया जिसके अंतर्गत मूल शब्द अथवा उस शब्द के किसी भी खण्ड या हिस्से की पुनरावृत्ति कर के नए शब्द बनाए जाए उस प्रक्रिया को पुनरुक्तिकरण (Reduplication) की प्रक्रिया कहते हैं। शब्द निर्माण की प्रक्रिया में जब मूल शब्द की पुनरावृत्ति पूरी तरह की जाती है तो उस प्रक्रिया को पूर्ण पुनरुक्तिकरण (Complete Reduplication) कहते हैं और जब शब्द की पुनरावृत्ति आंशिक रूप से की जाती है तो उस प्रक्रिया को आंशिक पुनरुक्तिकरण (Partial Reduplication) की प्रक्रिया कहते हैं। पुनरुक्तिकरण प्रक्रिया के द्वारा बने हुए हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार हैः– चाय–वाय, पानी–वानी, रोटी–वोटी, पैसा–वैसा, घर–घर, काम–काज, राज–काज, धीरे–धीरे, pooh-pooh, blah-blah, goody-goody इत्यादि।

iv) संक्षेपण/संक्षिप्तीकरण (Clippings/acronyms)

संक्षेपण/संक्षिप्तीकरण (Clippings) शब्द निर्माण की वह प्रक्रिया है जिसमे शब्द के किसी भी हिस्से को हटा कर शब्द का संक्षिप्त रूप प्रदान किया जाता है। शब्दों का संक्षप्तिकरण प्रायः दो तरीकों से किया जाता है। पहला तरीका यह है कि शब्द के पहले शब्दांश (syllable) को रखकर बाद के सभी हिस्से को हटा दिया जाए। इस प्रकार के द्वारा शब्दों का निर्माण प्रायः ही अंग्रेजी भाषा के शब्दों में देखने को मिलता है। निम्नलिखित उदाहरण में आप संक्षेपण विधि के द्वारा बने शब्दों को देख सकते हैः–

शब्द	संक्षिप्तिकरण प्रक्रिया के द्वारा बने शब्द
प्रोफेसर →	प्रो.
डॉक्टर →	डॉ.
लेबोरेटरी →	लैब
डॉक्यूमेंट →	डॉक

संक्षेपण की दूसरी प्रक्रिया में सभी शब्दों के केवल पहले अक्षरों को रखकर एवं बाकी सभी को अलग कर नए शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है। राजनीतिक पार्टियों के नाम प्रायः इस प्रक्रिया के द्वारा बने दिखाई देतें हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा बने शब्द कुछ इस प्रकार हैः–

शब्द	संक्षिप्तिकरण प्रक्रिया के द्वारा बने शब्द
भारतीय जनता पार्टी →	भाजपा
बहुजन समाजवादी पार्टी →	बसपा
समाजवादी पार्टी →	सपा

अंग्रेजी भाषा में भी इस प्रक्रिया के द्वारा शब्द बनाए जाते हैं। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहें हैं :

United States of America →	USA
United Kingdom	UK
Member of parliament →	MP

Member of Legislative Assembly	→	MLA
Compact Disk	→	CD
Digital Video Disk	→	DVD
National Aeronautics and Space Administration	→	NASA

अंग्रेजी में इस प्रक्रिया के द्वारा बने शब्दों को 'acronyms' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा नित्य नए शब्दों का निर्माण किया जाता रहता है चाहे हिंदी भाषा हो या अंग्रेजी। अतः आपने देखा कि किस प्रकार नए शब्दों का निर्माण किया जाता है। आइये, अब हम आपको रुपस्वनिमविज्ञान के बारे में बताएँ:–

8.4 रूपस्वनिमविज्ञान ;डवतचीवचीवदमउपबेद्ध

रूपस्वनिम विज्ञान रुपविज्ञान की ही एक शाखा है जिसे अंगेरजी में 'Morphophonemics' (मोर्फोफोनेमिक्स) के नाम से जानते हैं। रूपस्वनिम विज्ञान दो रूपों या दो शब्दों के आपस में मिलने पर उनके बीच होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का अध्ययन करता है। यह अध्ययन संस्कृत या हिंदी भाषा में किए जाने वाले 'संधि' के अध्ययन के जैसा ही है परन्तु यह संधि के अध्ययन से अलग है। वस्तुतः संधि में दो शब्दों के मिलने पर शब्द या पद के पहले या अंत में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है परंतु रुपस्वनिम विज्ञान में शब्द या पद के अन्य किसी भी स्थान पर होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के तौर पर 'गण+ईश = 'गणेश' एवं 'सूर्य+अस्त = सूर्यास्त' शब्दों में होने वाले परिवर्तन संधि परिवर्तन के हैं जबकि अंग्रेजी के शब्द 'cat (कैट) + s (स) = Cats (कैट्स)' परंतु 'Boy (बॉय)+s (स)' = Boys (बॉयज़) में होने वाले परिवर्तन संधि के नहीं अपितु रुपस्वनिमिक परिवर्तन के उदाहरण हैं। अतः रूपस्वनिमविज्ञान रुपस्वनिमिक परिवर्तनों का अध्ययन करता है।

8.5 सारांश

भाषा की सबसे छोटी अर्थधारक इकाई को रूपिम कहते हैं। रूपिम की उच्चारिकी स्वरुप को ही रूप कहते हैं एवं एक रूप के अनेक रूप हो सकते है जिन्हें उपरूप के नाम से जाना जाता है। रूपिम को मुख्यतः चार भेद होते हैं – मुक्त रूपिम, बद्ध रूपिम, शून्य रूपिम एवं संपृक्त रूपिम। मुक्त रूपिम के दो भेद होते हैं–शाब्दिक एवं व्याकरणिक रूपिम तथा बद्ध रूपिम के तीन – पूर्वसर्ग, मध्यसर्ग, एवं अंतसर्ग। बद्ध रूपिम को उसकी प्रकार्य के आधार पर रुपसद्धि एवं व्युत्पदाक रूपिम में विभाजित किया गया है। रुपिमिक विश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा हम किसी भी शब्द में प्रयुक्त या मौजूद रूपिम को शब्द से अलग कर सकते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शब्द, पद और रुपिम में अंतर है क्योंकि सिर्फ मुक्त रूपिम को ही शब्द कह सकते हैं बद्ध रूपिम को नहीं। बद्ध रूपिम का शब्दों के साथ प्रयोग कर नए शब्दों का निर्माण किया जाता है। शब्दों के साथ इसका प्रयोग व्याकरणिक प्रकार्य को बताने के लिए भी किया जाता है। रुपिमिक संरचना के आधार पर भी शब्दों को तीन प्रकार – सरल, जटिल एवं यौगिक में बाँटा गया है। शब्द निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण भी रुपविज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसमे आपने देखा की किस प्रकार हम नए शब्दों का निर्माण विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा कर सकते हैं। रुपविज्ञान की एक शाखा रूपस्वनिमविज्ञान भी है जो दों रूपों या दों शब्दों के मेल से शब्दों की आन्तरिक

संरचना में होने वाली सभी प्रकार के ध्वनि परिवर्तन का अध्ययन करती है। रुपविज्ञान (पदविज्ञान) की इस इकाई में रुपविज्ञान से सम्बंधित सभी विषय–वस्तु को न केवल समाहित कि ग है बल्कि इसकी प्रस्तुति भी सम्पूर्णता, स्पष्टता एवं उदाहरण के साथ करने की कोशिश की गई है।

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र– डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. भाषाविज्ञान की भूमिका– देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं दीप्ती शर्मा, राधाकृष्ण, नई दिल्ली
3. भाषाविज्ञान– डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहबाद
4. हिन्दी व्याकरण – पं. कामताप्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
5. Bloch, B. and Trager, G.L. 1972. Outlines of Linguistic Analysis. Baltimore: Linguistic Society of America.
6. Koul, O.N. 2008. Modern Hindi Grammar. America: Dunwoody Press.
7. Plag, I. et. al. 2007. Introduction to English Linguistics. The Hague: Mouton de Gruyter.
8. Robins, R. H. 1967. A Short History of Linguistics. London: Longman.
9. Varshney, R.L. 2008. *An Introductory Textbook of Linguistics & Phonetics*. Bareilly: Student Store.
10. Verma, S.K. & Krishnaswamy, N. 1989. *Modern Linguistics: An Introduction*. New Delhi: Oxford University Press.

8.7 अभ्यास प्रश्न

1. रूप, रूपिम एवं उपरूप के बारे में लिखिये।
2. रूपिम के प्रकार के बारे में लिखिये।
3. रुपसाधक एवं व्युत्पादक रूपिम में अंतर स्पष्ट कीजिये।
4. शब्द एवं पद का परिचय दीजिये।
5. शब्द निर्माण की प्रक्रिया के बारे में लिखिये।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 वाक्यविज्ञान

इकाई की रुपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 वाक्य की अवधारणा तथा वाक्य रचना के आवश्यक तत्व

9.2.1 शब्दक्रम या पदक्रम

9.2.2 अन्विति या अन्वय

9.2.3 निकटस्थ अवयव

9.2.4 अर्थसंगति

9.2.5 अर्थ की पूर्णता या आकांक्षा

9.3 वाक्य के भेद

9.3.1 संरचना के आधार पर

9.3.2 अर्थ के आधार पर

9.4 वाक्य विन्यास एवं वाक्य के विभिन्न घटक

9.4.1 उद्देश्य एवं विधेय

9.4.2 कर्ता, कर्म एवं क्रिया

9.4.3 उपवाक्य

9.4.4 पदबंध

9.4.5 निकटस्थ अवयव विश्लेषण

9.5 सारांश

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तके

9.7 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- वाक्यविज्ञान के बारे में समझ पाएँगे,
- वाक्य की अवधारणा तथा वाक्य रचना के आवश्यक तत्वों के बारे में जान पाएँगे,
- वाक्य के भेद को समझ सकेंगे,
- वाक्य विन्यास या वाक्य विश्लेषण को समझ पाएँगे,
- वाक्य के विभिन्न घटक को जान पाएँगे।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने रुपविज्ञान के बारे में अध्ययन किया हैं। इस इकाई में आप वाक्यविज्ञान के बारे में पढ़ेंगे। रुपविज्ञान की तरह वाक्यविज्ञान भी भाषाविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है जिनमे वाक्य के स्वरुप, वाक्य रचना के आवश्यक तत्व, वाक्य के विविध प्रकार एवं वाक्य विश्लेषण इत्यादि का समुचित रूप से अध्ययन किया जाता है। वाक्यविज्ञान को अंग्रेजी में 'Syntax' (सिंटेक्स) के नाम से जाना जाता है। आइये, इस इकाई में हम आपको वाक्य की अवधारणा तथा वाक्य रचना के आवश्यक तत्वों के बारे में बताएँ।

9.2 वाक्य की अवधारणा तथा वाक्य रचना के आवश्यक तत्व

जिस प्रकार ध्वनियों के मेल से रूपिम या शब्द की रचना होती है ठीक उसी प्रकार शब्दों या पदों के योग से वाक्य की रचना होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस प्रकार रूपिम भाषा की लघुत्तम अर्थवान इकाई है ,ठीक उसी प्रकार वाक्य को भी भाषा की सबसे बड़ी सार्थक इकाई के रूप में माना गया है। यहाँ सार्थक इकाई से तात्पर्य है–'जिसका कोई अर्थ हो' अर्थात् "शब्दों या पदों के सार्थक समूह को हम वाक्य कह सकते हैं।" उदाहरणस्वरुप–'राम आम खाता है' को एक वाक्य माना जायेगा क्योंकि यह शब्दों का सार्थक समूह है जिसका सम्पूर्ण अर्थ निकलता है परंतु इसके विपरीत, वाक्य का प्रयोग शब्दों के समूह के रूप में न कर एक शब्द के रूप में भी किया जा सकता है। एक शब्द के रूप में वाक्य का प्रयोग प्रायः हम अपनी बातचीत में करते हैं। नीचे दिए गए उदाहरण में आप देख सकते हैं कि किस प्रकार वाक्य का प्रयोग एक शब्द के रूप में किया गया हैः–

प्रश्न– आप क्या कर रहे हैं ?

उत्तर– पढ़ाई

यहाँ पूछे गए प्रश्न का उत्तर एक शब्द में दिया गया है। यहाँ यह एक शब्द नहीं बल्कि एक वाक्य ही है क्योंकि इसमें प्रयुक्त शेष शब्दों/पदों का लोप किया गया है। हालाँकि, वाक्य की अवधारणा को लेकर अनेक मतभेद हैं। वाक्य की परिभाषा इस बात पर निर्भर करती है कि आप वाक्य को किस इकाई के रूप में देखतें हैं। ऊपर के उदाहरण में हमने वाक्य को एक अर्थपरक एवं संरचनापरक इकाई के रूप में ही देखा है। यानि जब हम वाक्य की परिभाषा यह देते हैं कि "शब्दों या पदों के सार्थक समूह को वाक्य कहते हैं" तो हम वाक्य को अर्थ एवं संरचना की दृष्टिकोण से देख कर ही इस प्रकार की परिभाषा देते हैं। वाक्य को इन दो इकाइयों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक एवं सन्दर्भपरक इकाइयों के रूप में भी देखा गया है परन्तु अभी तक वाक्य की सबसे प्रचलित एवं महत्वपूर्ण परिभाषा अर्थपरक एवं संरचनात्मक दृष्टिकोण से ही दी जाती रही है। आइये, अब हम विभिन्न वैयाकरणों एवं भाषावैज्ञानिकों के द्वारा दी वाक्य की परिभाषा को देखते हैं ताकि वाक्य की अवधारणा को और अच्छे से समझ सकें–

कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–

पतंजलि एवं थ्राक्स दोनों के अनुसार–'पूर्ण अर्थ की प्रतीति करने वाले शब्द–समूह को वाक्य कहते हैं।' (डॉ. कपिलदेव द्विवेदी 2019 से उदधृत)

कामताप्रसाद गुरु के अनुसार–'एक विचार पूर्णता से प्रकट करने वाले शब्द–समूह को वाक्य कहते हैं।'

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार–'वाक्य पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक तत्व है।'

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार–'वाक्य ही भाषा की सूक्ष्तम सार्थक इकाई माना जाता है।'

प्रसिद्ध पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक, **ब्लूमफील्ड** अपनी पुस्तक 'Language (लैंग्वेज)' में वाक्य की परिभाषा कुछ इस प्रकार देते हैं–"Sentence is an independent linguistic form, not included by virtue of any grammatical construction in any larger linguistic form. (वाक्य एक स्वतंत्र भाषिक रूप है जो किसी व्याकरणिक रचना के तहत किसी बड़ी व्याकरणिक रचना का अंग नहीं है।)"

पाश्चात्य वैयाकरण, **ओटो जस्पर्सन** के अनुसार शब्द की परिभाषा कुछ इस प्रकार है–"A sentence is (relatively) complete and independent human utterance–the completeness and independence being shown by its standing alone or its capability of standing alone, i.e. of being uttered by itself. (वाक्य एक सम्पूर्ण एवं स्वतंत्र मानव उक्ति है इसकी सम्पूर्णता एवं स्वतंत्रता इस बात से साबित होती है कि यह स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त की जाती है।)"

उपरोक्त दी गई परिभाषा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न विद्वानों ने वाक्य की परिभाषा को अर्थ, संरचना, मानसिक एवं प्रायोगिक इत्यादि के दृष्टिकोण से देने की कोशिश की है।

वाक्य की परिभाषा मात्र जान लेने से वाक्य के बारे में हमें सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो जाती है। वाक्य के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें वाक्य रचना के आवश्यक तत्वों के बारे में जानना अति आवश्यक है। ये वे तत्व हैं जो किसी भी वाक्य की संरचना के लिए अति महत्वपूर्ण है। अगर किसी भी वाक्य में इन तत्वों में से कोई भी न हो तो शायद वह वाक्य संरचना की दृष्टिकोण से एक परिपूर्ण वाक्य होने की विशेषताओं को पूरा नहीं कर पाएगा।

वाक्य रचना के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं–

9.2.1 शब्दक्रम या पदक्रम

वाक्य की रचना में शब्दक्रम अथवा पदक्रम का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना होती है और उस संरचना मे भाषा का शब्दक्रम अथवा पदक्रम निहित होता है, जिसका अनुसरण कर शब्दों के प्रयोग द्वारा वाक्य निर्माण किया जाता है। हिंदी भाषा में मौजूद शब्द्क्रम अथवा पदक्रम को अगर आप देखेंगे तो पाएँगे कि वाक्य निर्माण की प्रक्रिया में सबसे पहले कर्ता, तत्पश्चात कर्म एवं अंत में क्रिया लगायी जाती है जैसा कि वाक्य–'राम पुस्तक पढ़ता है' में 'राम'–कर्ता, 'पुस्तक'–कर्म एवं 'पढ़ता है'–क्रिया है। इस प्रकार हिंदी भाषा में प्रयुक्त शब्द्क्रम या पदक्रम की व्यवस्था कुछ इस प्रकार है–कर्ता+कर्म+क्रिया। इसके विपरीत, अंग्रेजी भाषा में कर्ता के बाद क्रिया एवं सबसे अंत में कर्म लगाया जाता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा में कर्ता+क्रिया+कर्म पदक्रम मौजूद है। दोनों भाषा के पदक्रम को अगर हम तुलना करें तो पाते हैं कि अंग्रेजी एक Subject+Verb+Object (SVO) और हिंदी Subject +Object+Verb (SOV) भाषा है।

अतः वाक्य की संरचना में शब्दक्रम अथवा पदक्रम का अनुसरण करना अति आवश्यक है अन्यथा वाक्य व्याकरणसम्मत नहीं हो पाएगा।

9.2.2 अन्विति या अन्वय

प्रत्येक भाषा की अपनी भाषिक व्यवस्था होती है। भाषिक व्यवस्था से तात्पर्य है–भाषा में मौजूद व्याकरणिक नियम। वाक्य के गठन में भी व्याकरणिक नियमों का पालन अनिवार्य होता है। वाक्य के स्तर पर जिन नियमों का पालन किया जाता है उनमे से एक है अन्विति या अन्वय। अन्विति या अन्वय से तात्पर्य है–वाक्य में प्रयुक्त कर्ता एवं क्रिया या क्रिया एवं कर्म के बीच आपस में व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता या समानता अर्थात् कर्ता अगर एकवचन में है तो क्रिया भी एकवचन में होनी चाहिए। ठीक उसी प्रकार, कर्ता अगर स्त्रीलिंग रूप में है तो क्रिया का रूप भी स्त्रीलिंग ही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, क्रिया का रूप भी कर्म के अनुरूप ही होनी चाहिए अर्थात् कर्म अगर स्त्रीलिंग रूप में है तो क्रिया का रूप भी कर्म के स्त्रीलिंग रूप को अभिव्यक्त करें। इस प्रकार वाक्य के विभिन्न अवयवों के बीच के व्याकरणिक संबंध को अन्वय कहते हैं। इसे अंग्रेजी में 'agreement' (अग्रीमेंट) कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा में कर्ता एवं क्रिया के बीच होने वाली अन्वय को 'subject - verb agreement' के नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी भाषा में सिर्फ यही अन्वय देखने को मिलता है परंतु हिंदी भाषा में कर्ता के साथ क्रिया एवं कर्म के साथ क्रिया यानि अंग्रेजी में कहे तो 'subject - verb and object - verb' दोनों ही प्रकार के अन्वय (agreement) देखने को मिलतें हैं। अन्वय के कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं–

कर्ता के साथ क्रिया का अन्वय –

(i)	**लड़का**	**पढ़ता है**
	संज्ञा – एकवचन	*क्रिया –एकवचन*
	तृतीय पुरुष	*तृतीय पुरुष*
	पुल्लिंग	*पुल्लिंग*

परंतु

(ii)		**पढ़ती है**
	संज्ञा –एकवचन	*क्रिया – एकवचन*
	तृतीय पुरुष	*तृतीय पुरुष*
	स्त्रीलिंग	*स्त्रीलिंग*

उपरोक्त उदाहरण में आप देख सकते हैं कि संज्ञा अगर तृतीय पुरुष, एकवचन एवं पुलिंग में है तो क्रिया के साथ '–ता' लगेगा अर्थात् '–ता तृतीय पुरुष, एकवचन एवं पुलिंग का द्योतक है जबकि '–ती' तृतीय पुरुष, एकवचन एवं स्त्रीलिंग का यानि '–ती' तब लगेगा जब कर्ता तृतीय पुरुष, एकवचन एवं स्त्रीलिंग में हो।

इस प्रकार एक सम्पूर्ण एवं सफल वाक्य में अन्वय का होना अति आवश्यक है नहीं तो वाक्य को व्याकरणिक तौर पर अशुद्ध माना जायेगा। साधारणतः वाक्य में अन्वय–पुरुष, वचन, लिंग तथा कारक इत्यादि के अनुरूप देखने को मिलता है।

9.2.3 निकटस्थ अवयव

निकटस्थ अवयव का अर्थ है वाक्य में कौन सा पद किस पद के कितने निकट या समीप है यानि यह शब्दों या पदों के बीच की आपसी समीपता को बतलाता है। इसे सामान्यतः आसक्ति या सन्निधि भी कहा जाता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों के बीच की आपसी समीपता के आधार पर ही वाक्य का उच्चारण किया जाना चाहिए।

जब शब्द या पद वाक्य में प्रयोग किये जाते हैं तो उनको एक क्रमबद्ध तरीके से यानि व्याकरणिक नियमों को ध्यान में रखते हुए एक क्रम में वाक्य में रखा जाता है। ठीक उसी प्रकार जब उस वाक्य का उच्चारण किया जाना हो तो वाक्य को उसी क्रम में और सभी शब्दों या पदों का एक साथ उच्चारण किया किया जाना चाहिए न कि शब्दों या पदों का क्रम बिगाड़ करके या फिर एक–एक पद को कुछ समय के अन्तराल पर। अगर हम इस प्रकार बोलेंगे तो वाक्य का ढाँचा टूट जायेगा इसलिए वाक्य में प्रयुक्त पदों का एक साथ उच्चारण करना अति आवश्यक है। उदाहरणस्वरुप–'बच्चे को माँ बाप की आज्ञा का पालन करना चाहिए' वाक्य को निकटस्थ अवयव के आधार पर हम नीचे दिए गए प्रकार से विभाजन कर उसका उच्चारण सकते हैं–

बच्चे को माँ बाप की आज्ञा का पालन करना चाहिए

उपरोक्त उदाहरण में आप देख सकते हैं कि कौन सा अवयव (शब्द/पद) किसके समीप है। शब्दों या पदों की इसी समीपता को ध्यान में रखकर इसका उच्चारण भी किया जाना चाहिए अन्यथा वाक्य के अर्थबोध में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

9.2.4 अर्थसंगति

अर्थ संगति या योग्यता का अर्थ है कि वाक्य अर्थसंगत होनी चाहिए अर्थात् वाक्य में जो भी बातें कही जा रही है उसका अर्थ वास्तविक रूप से सही एवं तर्कसम्मत होनी चाहिए। उदाहरणस्वरुप–'वह आग से ख़त लिखता है' वाक्य व्याकरणिक दृष्टिकोण से ठीक एवं सम्पूर्ण होने के वावजूद भी अर्थ के स्तर पर तार्किक एवं अर्थसंगत प्रतीत नहीं होता है। अतः इस प्रकार के वाक्य को वाक्य की श्रेणी में नहीं रखा जायेगा क्योंकि अर्थ की दृष्टि से इस प्रकार के वाक्य योग्य या अनुपयुक्त साबित हो रहा है। यह संभव नहीं कि कोई भी व्यक्ति आग से ख़त लिख सकता है। वास्तविक रूप में इस प्रकार की बातें या घटनाएँ संभव नहीं है। अतः किसी भी वाक्य को व्याकरणिक ढंग से शुद्ध होने के साथ–साथ अर्थ के दृष्टिकोण से भी अर्थसंगत होनी चाहिए।

9.2.5 अर्थ की पूर्णता या आकांक्षा

अर्थ की पूर्णता या आकांक्षा से तात्पर्य है वक्ता द्वारा प्रयुक्त किये गए वाक्य में अर्थ की सम्पूर्णता से। अर्थात् जब वक्ता वाक्य का प्रयोग करें तो वह वाक्य की संरचना इस प्रकार करे कि उसके द्वारा प्रयोग किए गए वाक्य अर्थ की दृष्टि से सम्पूर्ण हो एवं श्रोता के मन में किसी भी प्रकार की आकांक्षा या जिज्ञासा न रह जाएँ। अगर वक्ता वाक्य के बदले सिर्फ पद का प्रयोग कर सम्प्रेषण करना चाहेगा तो पद के माध्यम से अर्थ की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाएगी और श्रोता के मन में जिज्ञासा बनी रह जाएगी। अतः अर्थ की पूर्णता वाक्य के प्रयोग द्वारा ही संभव है न कि पद एवं उपवाक्य के प्रयोग द्वारा। साथ ही, वाक्य का प्रयोग भी ऐसा होना चाहिए जिसमे सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति भी हो। उदाहरणार्थ –'उसने कहा कि...' उपवाक्य के प्रयोग द्वारा सम्पूर्ण अर्थ की सम्पूर्णता नहीं हो सकती है जिससें श्रोता के मन में जिज्ञासा

बनी रह जाएगी कि 'उसने क्या कहा ?' अतः इस बात से यह साबित होता है कि अर्थ की पूर्णता वाक्य के प्रयोग द्वारा ही संभव है न कि अधूरे वाक्य के प्रयोग द्वारा।

9.3 वाक्य के भेद

ऊपर आपने वाक्य की अवधारणा तथा वाक्य की परिभाषा को समझा है तथा वाक्य रचना के लिए क्या–क्या अनिवार्य तत्व होना चाहिए इसके बारे में भी अपने जाना है। आइये, अब आपको वाक्य के भेद या प्रकार के बारे में बताएँ। विभिन्न दृष्टिकोण के आधार पर वाक्य को अनके भागों में बाँटा जा सकता है परंतु रचना एवं अर्थ की दृष्टिकोण से वाक्य के प्रकार को समझना एवं उसके बारे में जानना अति आवश्यक है इसलिए आपको इन्हीं दो दृष्टिकोणों के आधार पर वाक्य के भेद को नीचे बताया जा रहा है–

9.3.1 संरचना के आधार पर

वाक्य की संरचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद किये गए हैं–

i) सरल या साधारण वाक्य (Simple Sentence)

ii) जटिल या मिश्र वाक्य (Complex Setence)

iii) संयुक्त वाक्य (Compound Sentence)

आइये, इन सभी के बारे में आपको विस्तार से बताएँ–

i) सरल या साधारण वाक्य (Simple Sentence)

सरल या साधारण वाक्य उस वाक्य को कहते हैं जिसमे कम से कम एक उद्देश्य (subject) और एक विधेय (predicate) हो या कम से कम जिसमे एक कर्ता (subject) एवं एक क्रिया (verb) का समावेश हो। जैसे–राम पढ़ता है, लड़का खेलता है इत्यादि। इस प्रकार के वाक्य में कर्ता के स्थान पर संज्ञा का प्रयोग किया जाता है परन्तु कभी कभी संज्ञा के जगह सर्वनाम का भी प्रयोग देखा जाता है जैसे कि– वह पढता है, तुम खेलते हो, वे खा रहे हैं इत्यादि। इसके अतिरिक्त, साधारण वाक्य में कर्ता (subject) एवं क्रिया (verb) के आलावा कर्म (object) भी लगा हो सकता है जैसे कि–लड़का पुस्तक पढ़ता है। इस वाक्य में 'पुस्तक' कर्म है।

अतः संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि साधरण वाक्य की संरचना या गठन में कम से कम एक कर्ता (subject) एवं एक क्रिया (verb) का होना अति आवश्यक है।

ii) जटिल या मिश्र वाक्य (Complex Setence)

जटिल या मिश्र वाक्य ऐसे वाक्य को कहते हैं जो दो उपवाक्यों के मेल से बना होता है। इस प्रकार के वाक्य में एक प्रधान एवं दूसरा आश्रित उपवाक्य होता है। दूसरे उपवाक्य को आश्रित उपवाक्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अपनी अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य वाक्य पर आश्रित रहता है।

जटिल वाक्य के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(क) श्याम ने कहा कि वह आज पढ़ाई नहीं करेगा।

श्याम ने कहा कि (आश्रित उपवाक्य)

वह आज पढ़ाई नहीं करेगा। (प्रधान उपवाक्य)

(ख) जिसके पास ज्ञान है उसकी पूजा होती है।

जिसके पास ज्ञान है (आश्रित उपवाक्य)

उसकी पूजा होती है। (प्रधान उपवाक्य)

(ग) जो आदमी मुझे कल मिला था वह मेरा दोस्त निकला।

जो आदमी मुझे कल मिला था (आश्रित उपवाक्य)

वह मेरा दोस्त निकला। (प्रधान उपवाक्य)

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि जटिल या मिश्र वाक्य वस्तुतः दो उपवाक्यों का मिश्रित रूप होता है। इसमें एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के वाक्य में प्रधान उपवाक्य का पूर्ण अर्थ निकलता है जबकि आश्रित उपवाक्य को अपने अर्थ की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए प्रधान उपवाक्य पर निर्भर या आश्रित रहना पड़ता है।

इस प्रकार के वाक्य की संरचना में आश्रित उपवाक्य कुछ समुच्चयबोधक अवयवों जैसे कि–जो, कि, जहाँ, तो, ताकि इत्यादि के द्वारा प्रधान उपवाक्य से जुड़े होते हैं। इन अवयवों के द्वारा आप आसानी से आश्रित उपवाक्य की पहचान जटिल वाक्य में कर सकते हैं।

iii) संयुक्त वाक्य (Compound Sentence)

ऐसे वाक्य जो दो या दो से अधिक सरल वाक्यों के मेल से बना हुआ हो उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। संयुक्त वाक्य में प्रयुक्त सरल वाक्य या प्रधान उपवाक्य अपने आप में स्वतंत्र होते हैं। अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए वे किसी अन्य उपवाक्य पर आश्रित नहीं होते हैं।

संयुक्त वाक्यों के गठन में कुछ समुच्चयबोधक अवयवों की आवश्यकता पड़ती है जैसे कि–और, एवं, तथा, लेकिन, किन्तु, परंतु, इसलिए, बल्कि, मगर, अथवा, न... न इत्यादि। संयुक्त वाक्य के उदाहरण निम्नलिखित है–

(क) राम आया और श्याम चला गया।

राम आया (सरल वाक्य)

और (संयोजक)

श्याम चला गया। (सरल वाक्य)

(ख) उसे आना था किन्तु मैंने मना कर दिया।

उसे आना था (सरल वाक्य)

किन्तु (संयोजक)

मैंने मना कर दिया। (सरल वाक्य)

(ग) मुझे मालूम है इसलिए यह बता रहा हूँ।

मुझे मालूम है (सरल वाक्य)

इसलिए (संयोजक)

यह बता रहा हूँ। (सरल वाक्य)

कभी कभी संयुक्त वाक्य में दो सरल वाक्यों को या दो से अधिक वाक्यों को जोड़ने के लिए अल्पविराम (comma) का भी प्रयोग किया जाता है जैसे कि–

(घ) क्या सोचा था, क्या हो गया।

(ङ) तुम रुको, उसे आने दो, फिर हम चलेंगे।

अतः उपरोक्त उदाहरणों के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दो प्रधान उपवाक्यों या सरल वाक्यों को समुच्चयबोधक अवयवों के द्वारा जोड़कर हम संयुक्त वाक्य कि रचना या गठन कर सकते हैं।

9.3.2 अर्थ के आधार पर

अर्थ के आधार पर वाक्य के आठ भेद होते हैं जो निम्नलिखित हैं–

i) साकारात्मक वाक्य

ii) नाकारात्मक वाक्य

iii) प्रश्नवाचक वाक्य

iv) आज्ञावाचक वाक्य

v) इच्छावाचक वाक्य

vi) संदेहवाचक वाक्य

vii) संकेतवाचक वाक्य

viii) विस्मयादिबोधक वाक्य

आइये, इन सभी वाक्यों के बारे में आपको विस्तार से बताएँ–

i) साकारात्मक वाक्य

सकारात्मक वाक्य ऐसे वाक्य को कहते हैं जिससे किसी सामान्य कथन या किसी व्यक्ति या वस्तु की कोई अवस्था का बोध हो जैसे कि–लड़का पढ़ता है, मैं कल दिल्ली जाऊँगा, उसकी तबियत इन दिनों ठीक नहीं हैं इत्यादि।

ii) नाकारात्मक वाक्य

ऐसे वाक्य जिससे नाकारात्मकता का बोध होता हो उसे नाकारात्मक वाक्य कहते हैं। इसे निषेधवाचक वाक्य भी कहा जाता हैं। वस्तुतः साकारत्मक वाक्य में ही निषेधवाचक तत्व जैसे कि–न, नहीं एवं मत इत्यादि का प्रयोग कर नाकारात्मक वाक्य बनाया जाता है जैसे–मैं आपकी एक भी बात नहीं मानूँगा, वह एक भी न सुनेगा, ऐसा मत करो इत्यादि।

iii प्रश्नवाचक वाक्य

ऐसे वाक्य जिनसे प्रश्न पूछने का बोध होता हो उसे प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं। प्रश्नवाचक वाक्य प्रायः दो तरीकों से बनाया जाता है। पहला यह कि प्रश्नवाचक वाक्य बनाने के लिए वाक्य के प्रारंभ में 'क्या' शब्द लगाया जाता है जिसका उत्तर हाँ या ना में दिया जाता है। अंग्रेजी में इसे 'yes/no question' (हाँ/ना प्रश्न) कहते हैं।

दूसरा यह कि प्रश्नवाचक वाक्य बनाने के लिए प्रश्नवाचक शब्द जैसे कि–क्या, कब, कहाँ, क्यों, कैसे, किधर इत्यादि शब्द वाक्य के बीच में लगाए जाते हैं

जिसका उत्तर हाँ या ना में न देकर विस्तारपूर्वक दिया जाता है। अंग्रेजी में इसे 'wh-question' (wh–प्रश्न) कहते हैं। एक और बात महत्वपूर्ण है कि दोनों ही प्रकार के प्रश्नवाचक वाक्य के अंत में प्रश्नवाचक चिन्ह (?) का प्रयोग अनिवार्य होता है। प्रश्नवाचक वाक्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार है–

(क) क्या आप ठीक हैं ? (हाँ / ना प्रश्न)

(ख) क्या मैं आपकी मदद कर सकता हूँ ? (हाँ / ना प्रश्न)

(ग) आपको किसने भेजा है ? (wh–प्रश्न)

(घ) आप किधर जायेंगे ? (wh–प्रश्न)

iv) आज्ञावाचक वाक्य

आज्ञावाचक वाक्य उसे कहते हैं जिनसे आज्ञा, निर्देश, एवं अनुरोध इत्यादि का भाव प्रकट होता हो। इस प्रकार के वाक्य को आज्ञार्थक वाक्य के नाम से भी जाना जाता है। आज्ञावाचक वाक्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

(क) तुम यहीं रहो। (आज्ञा)

(ख) कृप्या चलने की कृपा करें। (अनुरोध)

(ग) आपको यह काम कल शाम तक अवश्य ख़त्म करना है। (निर्देश)

v) इच्छावाचक वाक्य

जिस वाक्य से वक्ता की इच्छा, कामना, एवं शुभकामना इत्यादि का बोध होता हो उसे इच्छावाचक वाक्य

कहते हैं। उदाहरणस्वरुप–

(क) भगवान आपको लम्बी उम्र दें। (शुभकामना)

(ख) सदा प्रसन्न रहो। (कामना)

(ग) काश! मेरे पास एक बंगला होता। (इच्छा)

vi) संदेहवाचक वाक्य

ऐसे वाक्य जिनमे किसी काम के होने के प्रति सम्भावना अभिव्यक्त हो या संदेह प्रकट होता हो उसे संदेहवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे–

(क) अब तक वह आ चूका होगा। (सम्भावना)

(ख) आज लाईट जा सकती है। (संदेह)

(ग) शायद, आज वह चला जाएगा। (सम्भावना)

(घ) तुम कैसे कर पाओगे इस काम को। (संदेह)

vii) संकेतवाचक वाक्य

जिन वाक्य से शर्त की अभिव्यक्ति होती है उसे संकेतवाचक वाक्य कहते हैं। उदाहरणस्वरुप–

क) अगर तुम मेहनत करोगे तो अवश्य सफल होगे।

ख) अगर बारिश होगी तो फसल अच्छी होगी।

ग) अगर वह जाएगा तो मैं नहीं जाऊँगा।

viii) **विस्मयादिबोधक वाक्य**

विस्मयादिबोधक वाक्य उसे कहते हैं जिनसे आश्चर्य, प्रेम, घृणा, शोक, हर्ष, उल्लास, जोश, दुःख इत्यादि का बोध होता है। जैसे–

क)	अरे! तुम आ गए!	(आश्चर्य)
ख)	छिः कितना गन्दा है!	(घृणा)
ग)	भगवान उनकी आत्मा को शांति दे!	(दुःख)
घ)	मजेदार! इसे खाकर मन तृप्त हो गया।	(हर्ष)

9.4 वाक्य विन्यास एवं वाक्य के विभिन्न घटक

वाक्य विन्यास का अर्थ है वाक्य का विभाजन या विश्लेषण। इसके द्वारा हम वाक्य में मौजूद वाक्यगत कोटियों अथवा अवयवों के बारे में जान सकते हैं। वाक्य विश्लेषण के द्वारा हम वाक्य की आतंरिक संरचनाओं की भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। वाक्य का विभाजन हम उद्देश्य एवं विधेय, कर्ता, कर्म एवं क्रिया, उपवाक्य एवं पदबंध इत्यादि के स्तर पर कर सकते हैं। ये सभी वाक्य संरचना के प्रमुख घटक/अवयव कहे जाते हैं।

इस खंड में आप वाक्य विश्लेषण के द्वारा इन्हीं प्रमुख घटकों/अवयवों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

9.4.1 उद्देश्य एवं विधेय (Subject and Predicate)

विश्व की प्रत्येक भाषा की अपनी अलग–अलग आन्तरिक संरचना होती है। इस प्रकार सभी भाषाओँ की वाक्य संरचना पद्धति भी अलग–अलग है। अतः सभी भाषाओँ के वाक्यों का विभाजन भी एक सा संभव नहीं है। इन सब के बावजूद प्रायः सभी भाषाओँ के वाक्य को दो भागों–उद्देश्य एवं विधेय में बाँटा जाता है। अंग्रेजी भाषा में उद्देश्य एवं विधेय को 'subject and predicate' के नाम से जाना जाता है। नीचे दिए गए उदाहरण में देखिए कि कैसे हिंदी भाषा के सरल वाक्यों को उद्देश्य एवं विधेय में बाँटा गया है–

क) राम पढ़ता है।

राम	(उद्देश्य)
पढ़ता है।	(विधेय)

ख) वह लड़का स्कूल जाता है।

वह लड़का	(उद्देश्य)
स्कूल जाता है।	(विधेय)

ग) एक गरीब आदमी सड़क पर भीख माँग रहा है।

एक गरीब आदमी	(उद्देश्य)
सड़क पर भीख माँग रहा है।	(विधेय)

ऊपर दिए गए उदाहरणों में आप देख सकते है कि 'राम', 'वह लड़का', एवं 'एक गरीब आदमी' को उद्देश्य कहा गया है। इनमे किसी न किसी के बारे में या विषय में कुछ कहा जा रहा है। इसके विपरीत, 'पढ़ता है', 'स्कूल जाता है' एवं 'सड़क पर

भीख माँग रहा है' को विधेय कहा गया है क्योंकि इन सब में उद्देश्य के बारे कुछ न कुछ कहा जा रहा की वे क्या –क्या कर रहे है इत्यादि। अतः वाक्य का वे हिस्सा या खण्ड जिनके बारे में वाक्य में कुछ कहा जाता है उसे उद्देश्य एवं वह हिस्सा या खण्ड जिसमें उद्देश्य के बारे में कुछ कहा गया होता है उसे विधेय कहते हैं।

इस प्रकार किसी भी साधारण या सरल वाक्य को उद्देश्य एवं विधेय दो भागो में बाँटा जा सकता है अर्थात् किसी भी वाक्य की संरचना में कम से कम एक उद्देश्य एवं एक विधेय का होना जरुरी है। अतः उद्देश्य एवं विधेय वाक्य रचना के जरुरी घटक या अवयव हैं।

9.4.2 कर्ता, कर्म एवं क्रिया (Subject, Object and Verb)

ऊपर आपने देखा कि किस प्रकार एक वाक्य को उद्देश्य एवं विधेय में बाँटा जा सकता है। पुनः एक वाक्य को हम तीन खण्डों में–कर्ता, कर्म एवं क्रिया में बाँट सकते हैं। वस्तुतः उद्देश्य को ही 'कर्ता' कहा जाता है एवं विधेय को पुनः दो भागों में 'कर्म' एवं 'क्रिया' में बाँटा जाता है। नीचे दिए गए उदाहरण में समझने की कोशिश कीजिये कि वाक्य के किस हिस्से को कर्ता, कर्म एवं क्रिया में बाँटा गया है–

राम पुस्तक पढ़ता है।

(क)	राम	(उद्देश्य)
	पुस्तक पढ़ता है।	(विधेय)
(ख)	राम	(कर्ता)
	पुस्तक	(कर्म)
	पढ़ता है।	(क्रिया)

ऊपर दिए गए उदाहरण में आप देख सकते हैं कि 'राम' को कर्ता, 'पुस्तक' को कर्म एवं 'पढ़ता है' को क्रिया कहा गया है। अब हमारे लिए ये जानना महत्वपूर्ण है कि कर्ता, कर्म एवं क्रिया कहते किसे हैं ? इन तीनों को निम्न रूप में परिभाषित किया गया है–

कर्ता–सामान्यतः जिसके बारे में वाक्य में कुछ कहा जाता है उसे कर्ता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, वह जो वाक्य में किसी काम को करता है उसे भी कर्ता के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः वाक्य में कर्ता का स्थान कर्म एवं क्रिया से पहले होता है। यह मान लीजिये की वाक्य की शुरुआत ही कर्ता से की जाती है। कर्ता के रूप में सामान्यतः संज्ञा एवं सर्वनाम का ही वाक्य में प्रयोग किया जाता है।

अतः ऊपर के दिए गए उदाहरण में 'राम' कर्ता इसलिए है क्योंकि राम के द्वारा पुस्तक पढ़ने का कार्य किया जा रहा है।

कर्म–कर्ता के काम का फल जिस पर पड़े उसे कर्म कहते है। हिंदी भाषा के वाक्य में कर्म का स्थान कर्ता के बाद एवं क्रिया के पहले आता है। कर्ता की तरह कर्म भी वाक्य में बहुधा संज्ञा एवं सर्वनाम के रूप में ही प्रयोग किया जाता है।

ऊपर दिए गए उदाहरण में आप देख सकते हैं कि 'पुस्तक' को कर्म कहा गया है क्योंकि राम के द्वार पढ़ने का कार्य किया जा रहा है जिसका फल 'पुस्तक' पर पड़ रहा है अतः 'पुस्तक' यहाँ 'कर्म' है।

क्रिया—सामान्यतः जिस शब्द के द्वारा किसी कार्य के होने अथवा करने का बोध होता हो उसे क्रिया कहा जाता है। क्रिया का स्थान वाक्य में प्रायः कर्ता के बाद ही आता है। हिंदी भाषा में क्रिया का स्थान कर्ता एवं कर्म दोनों के बाद सबसे अंत में आता है। ऊपर दिए गए उदाहरण में 'पढ़ता है' को क्रिया कहा गया है क्योंकि इस शब्द से किसी कार्य के होने का बोध हो रहा है। एक और बात उल्लेखनीय है कि क्रिया इस वाक्य में कर्ता एवं कर्म के ही बाद ही प्रयुक्त हुआ है।

अतः संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि एक साधारण वाक्य की रचना 'कर्ता, कर्म एवं क्रिया' के योग से ही की जाती है। हिंदी भाषा के विपरीत, अंग्रेजी भाषा में क्रिया कर्ता के बाद एवं कर्म के पहले लगायी जाती है एवं कर्म का स्थान सबसे अंत में आता है जैसे कि—'Ram eats an apple' में Ram (कर्ता) eats (क्रिया) an apple (कर्म) है। इसके अतिरिक्त, किसी—किसी वाक्य में कर्ता का विस्तार जैसे—'एक बेकार आदमी', एक से अधिक क्रिया एवं कर्म, क्रिया—विशेषण, कारक चिन्ह, पूरक इत्यादि का भी प्रयोग हो सकता है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि किसी भी वाक्य को विभाजन करने पर कम से कम एक कर्ता, एक कर्म एवं एक क्रिया का प्रयोग आपको देखने को मिलेगा। अतः ये भी वाक्य के प्रमुख घटक या अवयव है जिनके बिना वाक्य की संरचना संभव नहीं हैं।

9.4.3 उपवाक्य (Clause)

वाक्य को कर्ता, कर्म एवं क्रिया के अतिरिक्त उपवाक्यों में भी विभाजित किया जा सकता है। पदबंध से बड़ी एवं वाक्य से छोटी भाषिक इकाई को उपवाक्य कहा जाता है। मुख्यतः उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं—मुख्य एवं आश्रित उपवाक्य। मुख्य उपवाक्य वे होते हैं जो अपने आप में स्वतंत्र होते हैं एवं इसके द्वारा अर्थ की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। इसके विपरीत, आश्रित उपवाक्य वे होते हैं जो अपने अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य उपवाक्य पर निर्भर रहते हैं। संरचनात्मक दृष्टिकोण से एक और बात यह महत्वपूर्ण है कि मुख्य उपवाक्य में उद्देश्य एवं विधेय होने के कारण वह सम्पूर्ण वाक्य के जैसा ही होता है या यूँ कहें कि मुख्य उपवाक्य ही सरल वाक्य होता है।

अतः वाक्यों का विश्लेषण या विन्यास करने पर वाक्य में विभिन्न तरह के उपवाक्यों के प्रयोग को देखा जा सकता है। नीचे कुछ वाक्यों का विश्लेषण किया गया है उसे ध्यान से देखिए एवं समझने की कोशिश कीजिये कि किस प्रकार उपवाक्यों का प्रयोग वाक्य संरचना में महत्वपूर्ण हैं—

(क) **सरल वाक्य**—

मैंने एक लैपटॉप ख़रीदा। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) —

उसने कहा कि तुम्हारा कोई दोष नहीं है।

उसने कहा	(आश्रित उपवाक्य)
कि	(संयोजक)
तुम्हारा कोई दोष नहीं है।	(मुख्य उपवाक्य)

(ग) **संयुक्त वाक्य**—

मैंने एक लैपटॉप ख़रीदा परंतु वह ठीक से नहीं चल रहा है।

मैंने एक लैपटॉप ख़रीदा (मुख्य उपवाक्य)

परंतु (संयोजक)

वह ठीक से नहीं चल रहा है। (मुख्य उपवाक्य)

अतः ऊपर दिए गए वाक्यों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक या एक से अधिक उपवाक्यों का प्रयोग कर सरल, जटिल एवं संयुक्त वाक्य बनाया जा सकता है। एक मुख्य उपवाक्य के प्रयोग कर सरल वाक्य की रचना की जाती है जबकि एक मुख्य एवं आश्रित उपवाक्य के द्वारा जटिल वाक्य की रचना की जाती है। इसके अतिरिक्त, कम से कम दो मुख्य उपवाक्यों को मिलाकर संयुक्त वाक्य की रचना की जाती हैं। जटिल वाक्य एवं संयुक्त वाक्य की रचना में जब दो उपवाक्यों का प्रयोग किया जाता है तो दोनों उपवाक्यों के बीच में संयोजक चिन्ह (conjunctions) भी लगाया जाता है।

9.4.4 पदबंध (Phrases)

उपवाक्य से छोटी परन्तु शब्द एवं पद से बड़ी इकाई को पदबंध कहते हैं। जब हम उपवाक्य को विभाजित करते हैं तो हमें भाषिक इकाई के रूप में पदबंध मिलता है एवं पदबंध को विभाजित करने पर पद। पद एवं पदबंध में अंतर है। हिंदी एवं संस्कृत व्याकरण में पद की संकल्पना की गई है परन्तु अंग्रेजी भाषा के व्यकरण में एवं पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने सिर्फ पदबंध की ही संकल्पना की है। पद एवं पदबंध में निम्नलिखित अंतर है–

पद–साधारणतः वाक्य में प्रयुक्त शब्द को पद कहा जाता है क्योंकि शब्द जब वाक्य में प्रयोग किया जाता है तो शब्द अपने मूल रूप में न रहकर व्याकरणिक इकाइयों से जुड़ जाता है और शब्द व्याकरणिक संबंधों को दर्शाने लगता है। इसलिए वाक्य में प्रयुक्त शब्द को पद कह कहा गया है।

पदबंध–जब दो या दो से अधिक पद मिलकर भी एक ही पद का कार्य करता है तो उसे पदबंध कहते हैं। दूसरे शब्दों में, पदों का वह समूह जो एक ही पद को दर्शाता है को पदबंध कहते हैं। पदबंध संरचना एवं आकार में पद से बड़ा होता है।

पद एवं पदबंध को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है–

क) माली पानी दे रहा है।

माली (पद)

पानी (पद)

दे रहा है (पदबंध)

ख) मेरा माली बगीचे में पानी दे रहा है।

मेरा माली (पदबंध)

बगीचे में (पदबंध)

पानी दे रहा है (पदबंध)

उपरोक्त उदाहरण (क) में आप देख सकते हैं कि 'माली' एवं 'पानी' एकल शब्द के रूप में वाक्य में प्रयोग किया गया है अतः वे पद है परंतु 'दे रहा है' में दो से अधिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार वे सभी एक से अनके पद है परन्तु ये सभी पद आपस में मिलकर भी एक ही पद का कार्य कर रहे हैं जिसके कारण ये पदबंध कहे जायेंगे। ठीक उसी प्रकार उदाहरण (ख) में–'मेरा माली', 'बगीचे में' एवं 'पानी दे

रहा है' वाक्य में में एक से अत्यधिक पद है और ये सभी पद आपस में मिलकर एक ही पद का कार्य कर रहे हैं जिसके कारण वे सभी पदबंध है। इस प्रकार एक से अत्यधिक पदों के प्रयोग द्वारा पदबंध का निर्माण किया जाता है या यूँ कह लें कि पदों का विस्तार या पदों का समूह जो एक ही पद का कार्य करता हो वह ही पदबंध है।

वाक्य में एक से अधिक एवं अलग–अलग प्रकार के पदबंध हो सकते है। पदबंधों की पहचान के लिए हमें संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण एवं क्रिया–विशेषण इत्यादि जैसे व्याकरणिक कोटियों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक पदबंध में एक मुख्य पद (शीर्ष पद) होता है जिसे अंग्रेजी में 'head' कहा जाता है। मुख्य पद के अतिरिक्त शेष पद जो मुख्य पद पर निर्भर होते हैं उन्हें आश्रित पद कहते हैं। मुख्य पद की जो व्याकरणिक कोटि होती है उसी कोटि के आधार पर उस पदबंध की पहचान की जाती है। अतः पदबंधों में मौजूद मुख्य पदों (शीर्ष पदों) की व्याकरणिक कोटियों के आधार पर पदबंधों को संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, विशेषण, क्रिया–विशेषण इत्यादि पदबंधों के रूप में बाँटा गया है। इन सभी प्रकार के पदबंधों के उदाहरण नीचे दिए गए हैं–

i) **संज्ञा पदबंध**–जिसका शीर्ष पद संज्ञा हो। जैसे–

   दशरथ के पुत्र राम, सिया पिया घर, राम का भाई लक्ष्मण इत्यादि।

ii) **सर्वनाम पदबंध** – जिसका शीर्ष पद सर्वनाम हो। जैसे –

   विरोध करने वाले छात्रो में से कुछ, तुम लोगों ने, यहाँ आने वाले में से अनेक इत्यादि।

iii) **क्रिया पदबंध**

) **विशेषण पदबंध** – जिसका शीर्ष पद विशेषण हो। जैसे–

   मेहनत करने वाला, अत्यंत सुन्दर एवं सुशील, सुन्दर दिखने वाला व्यक्ति इत्यादि।

v) **क्रिया–विशेषण पदबंध** – जिसका शीर्ष पद क्रिया–विशेषण हो। जैसे–

   तेज दौड़ती हुई, लेटे– लेटे पढ़ रहे हैं, बहुत तेज– तेज इत्यादि।

अतः संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि पदबंध पदों के समूह से बनी हुई वह छोटी भाषिक इकाई है जो न केवल उपवाक्य से छोटी होती है बल्कि जिसमे अर्थ की अभिव्यक्ति भी उपवाक्य की अपेक्षा आंशिक रूप से ही हो पाती है। इस प्रकार आप यह देख सकते हैं कि अन्य भाषिक इकाई की तरह पद एवं पदबंध भी वाक्य–संरचना के आवश्यक घटक है।

इस खण्ड में आपने यह पढ़ा कि किस प्रकार हम वाक्यों का विभाजन या विश्लेषण विभिन्न स्तरों पर कर सकते हैं एवं वे कौन–कौन से भाषिक घटक या अवयव हैं जो वाक्य संरचना के लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं। वाक्य के स्तर पर मौजूद भाषिक इकाइयों को छोटे से बड़े क्रम (क) में एवं बड़े से छोटे क्रम (ख) में निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है–

(क) पद → पदबंध → उपवाक्य → वाक्य

(ख) पद ← पदबंध ← उपवाक्य ← वाक्य

इस प्रकार आप देख सकते है कि वाक्य के स्तर पर पद सबसे छोटी इकाई, उसके बाद पदबंध, फिर उपवाक्य एवं सबसे बड़ी इकाई वाक्य होती है।

आइये, अब आपको वाक्य विन्यास के एक और महत्वपूर्ण तरीके से अवगत कराते हैं जिसे भाषाविज्ञान में में निकटस्थ अवयव विश्लेषण के नाम से जाना जाता है।

9.4.5 निकटस्थ अवयव विश्लेषण (Immediate Constituent Analysis)

निकटस्थ अवयव विश्लेषण को अंग्रेजी में 'Immediate Constituent Analysis' कहते हैं। इसकी संकल्पना ब्लूमफील्ड (bloomfield) ने सं. 1939 ई. में की थी। उन्होंने इस विश्लेषण के द्वारा वाक्य में मौजूद अवयवों में से कौन सा अवयव ,किस अवयव के कितने निकट है ,इसके बारे में बताया था। निकटस्थ अवयव विश्लेषण में वाक्यों का एक निश्चित एवं क्रमवार तरीके से विश्लेषण किया जाता है यानि वाक्य को बड़े से छोटे अवयवों में जैसे कि–वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद या शब्द इत्यादि में तब तक विभाजित किया जाता है जब तक वाक्य विश्लेषण रूपिम के स्तर तक न पहुँच जाए। निकटस्थ अवयव विश्लेषण दो तरीकों से किया जाता है–(i) ब्रैकेट्स (brackets) पद्धति तथा (ii) वृक्ष–आरेख (tree diagram) पद्धति। इन दोनों में से सबसे प्रचलित तरीका वृक्ष–आरेख (tree diagram) पद्धति का है क्योंकि इसके प्रयोग के द्वारा वाक्य में प्रयुक्त अवयवों की व्याकरणिक कोटियाँ या प्रकार्यों के बारे में जानकारी देना आसान हो जाता है। नीचे अंग्रेजी भाषा के एक सरल वाक्य को लेकर उसका निकटस्थ अवयव विश्लेषण दोनों ही पद्धतियों के द्वारा करके दिखाया गया है ताकि आपको निकटस्थ अवयव विश्लेषण के बारे में समझने में और आसानी हो।

(i) ब्रैकेट्स (brackets) पद्धति–

[A white dog barked at the women]
S

Step I [A white dog] [barked at the women]
NP VP

Step II [A {white dog}] [barked {at the women}]
NP Adj Ph VP PP

Step III [A {white dog}] [barked {at <the women>}]
NP Adj Ph VP PP NP

Step IV [A { (white) (dog)}] [(barked) {(at) < (the (women)>}]
NP Adj Ph Adj N VP PP NP Det N

यहाँ–

S	=	Sentence	(वाक्य)
NP	=	Noun Phrase	(संज्ञा पदबंध)
VP	=	Verb Phrase	(क्रिया पदबंध)
Det	=	Determiner	(निर्धारक)
Adj Ph	=	Adjectival Phrase	(विशेषण पदबंध)
Adj	=	Adjective	(विशेषण)
N	=	Noun	(संज्ञा)
Aux	=	Auxiliary Verb	(सहायक क्रिया)

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

V	=	Verb	(क्रिया)
PP	=	Prepositional phrase	(पूर्वसर्ग पदबंध)
Prep	=	Preposition	(पूर्वसर्ग)

इसी वाक्य को वृक्ष–आरेख पद्धति के द्वारा निम्न तरीके से विश्लेषण किया जा सकता है–

(ii) वृक्ष–आरेख (tree diagram) पद्धति–

A white dog barked at the women

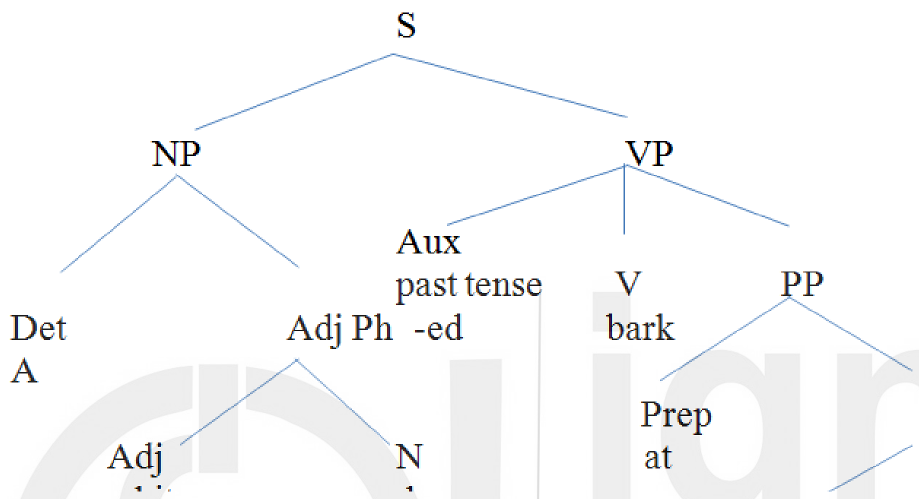

Rules:-

S	=	NP+VP
NP	=	Det+ Adj Ph
Adj Ph	=	Adj+ N
VP	=	V+ PP
PP	=	Prep+ NP
NP	=	Det+ N

उपरोक्त उदाहरण में आप देख सकते हैं कि वाक्य में कौन सा अवयव किस अवयव के सबसे निकटत्तम है। इस प्रकार से किया गया वाक्यों का विश्लेषण भाषाविज्ञान में निकटस्थ अवयव विश्लेषण के नाम से जाना जाता है।

9.5 सारांश

इस इकाई में वाक्य की अवधारणा, वाक्य रचना के आवश्यक तत्व, संरचना एवं अर्थ के आधार पर वाक्य के भेद तथा वाक्य विन्यास के द्वारा वाक्य के प्रमुख घटक इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है। शब्दों के सार्थक समूह या पदों के मेल से बने सार्थक भाषिक इकाई को सामान्यतः वाक्य कहा जाता है। इसे भाषा की सबसे बड़ी सार्थक इकाई के रूप में भी माना गया है। हालाँकि, वाक्य की परिभाषा एवं वाक्य को भाषा की सबसे बड़ी इकाई माना जाना चाहिए की नहीं, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद **रहा** है इसलिए अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने अनुसार वाक्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। किसी भी वाक्य की रचना करने पर उस

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

वाक्य में वाक्य रचना के आवश्यक तत्व जैसे कि–पदक्रम, अन्वय, निकटस्थ अवयव, अर्थ संगति एवं अर्थ की पूर्णता का होना अति आवश्यक है अन्यथा वह वाक्य व्यावहारिक एवं व्याकरणिक रूप से शुद्ध वाक्य नहीं माना जाएगा। वाक्य को मुख्यतः संरचना एवं अर्थ के आधार पर बाँटा जा सकता है। संरचना के आधार पर वाक्य को सरल, संयुक्त एवं जटिल वाक्य में बाँटा गया है और अर्थ के आधार पर वाक्य को सकारात्मक, नकारात्मक, प्रश्नवाचक, आज्ञावाचक, इच्छावाचक, संदेहवाचक, संकेतवाचक एवं विस्मयादिबोधक इत्यादि वाक्यों में बाँटा गया है। वाक्य की आतंरिक संरचना के बारे में और अच्छे से जानने के लिए एवं वाक्य में मौजूद वाक्य के विभिन्न घटकों के बारे में पता लगाने के लिए वाक्य का विन्यास या विश्लेषण किया जाना जरुरी है। वाक्य–विन्यास या विश्लेषण में हम वाक्य को बड़े से छोटे इकाइयों में या छोटे से बड़े इकाइयों में विखण्डन कर सकते है। वाक्य का विखण्डन या विश्लेषण करने पर हमें वाक्य में विभिन्न प्रकार के घटक या अवयव दिखाई देते हैं जैसे कि–उद्देश्य, विधेय, कर्ता, कर्म, क्रिया, उपवाक्य, पदबंध, एवं पद इत्यादि। निकटस्थ अवयव विश्लेषण के द्वारा वाक्य में मौजूद वाक्य के सबसे निकटत्तम अवयवों का भी पता लगाया जाता है। इस प्रकार वाक्य के विश्लेषण के द्वारा हम न केवल वाक्य के विभिन्न घटकों या अवयवों का पता लगा पाते हैं बल्कि हमें वाक्य की आन्तरिक संरचनाओं की भी जानकारियाँ मिलती हैं जिसको बिना जाने या समझे हम वाक्य की बेहतर संरचना नहीं कर सकते हैं। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि इस इकाई में आपने वाक्य की परिभाषा से लेकर वाक्य रचना के आवश्यक तत्व एवं वाक्य की आतंरिक संरचनाओं से जुड़ी हर एक पहलु की जानकारी प्राप्त की है जिसका अध्ययन वाक्यविज्ञान में अनिवार्य रूप से किया जाता है।

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र–डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. भाषाविज्ञान की भूमिका–देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं दीप्ती शर्मा, राधाकृष्ण, नई दिल्ली
3. भाषाविज्ञान–डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहबाद
4. हिन्दी व्याकरण–पं. कामताप्रसाद गुरु, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
5. महाभाष्य–पतंजलि
6. सामान्य भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा–डॉ. मुकेश अग्रवाल, यूनिवर्सल पब्लिशर्स, दिल्ली
7. वाक्य की परिभाषा एवं स्वरुप–वी. आर. जगन्नाथन, ई. पीजी. पाठशाला मोड्यूल, http://epgp.inflibnet.ac.in
8. Bloomfield, L. 1950. *Language*. New York: Henry Holt.
9. Jesperson, O. 1949. *Language: Its Nature, Development and Origin*. London: Georg

   Allen & Unwin Ltd.
10. Koul, O. N. 2008. *Modern Hindi Grammar*. America: Dunwoody Press.
11. Varshney, R. L. 2008. *An Introductory Textbook of Linguistics & Phonetics*. Bareilly: Student Store.

12. Verma, S. K. & Krishnaswamy, N. 1989. *Modern Linguistics: An Introduction*. New Delhi: Oxford University Press.

9.7 अभ्यास प्रश्न

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 अर्थविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 अर्थविज्ञान का इतिहास

10.3 अर्थ का महत्व

10.4 शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

10.5 अर्थ का लक्षण

10.6 अर्थज्ञान प्रक्रिया–

10.7 अर्थों के अध्ययन में उपयोगी नियम–

- 10.7.1 बुद्धिनियम और ध्वनिनियम
- 10.7.2 भेद (भेदीकरण) का नियम
- 10.7.3 उद्योतन का नियम
- 10.7.4 विभक्तियों के भग्नावशेष का नियम
- 10.7.5 मिथ्या प्रतीति का नियम
- 10.7.6 उपमान का नियम–
- 10.7.7 नये लाभ
- 10.7.8 अनुपयोगी रूपों का विनाश

10.8 अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ

- 10.8.1 अर्थापकर्ष
- 10.8.2 अर्थोपदेश
- 10.8.3 अर्थोत्कर्ष
- 10.8.4 अर्थ का मूर्तीकरण तथा अमूर्तीकरण
- 10.8.5 अर्थसंकोच
- 10.8.6 रूपक
- 10.8.7 अनेकार्थता
- 10.8.8 एकोच्चरित समूह
- 10.8.9 समास
- 10.8.10 नामकरण

10.9 शब्द और इसके भेद

- 10.9.1 शब्द–शक्ति का स्वरूप
- 10.9.2 शक्ति के अन्य पर्यायवाची शब्द
- 10.9.3 वाचक शब्द

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

10.9.4 व्यवहार द्वारा संकेत–ग्रह

10.9.5 संकेत का स्वरूप

10.9.6 संकेत ग्राहक और संकेत कर्त्ता

10.10 सारांश

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.12 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- शब्द और अर्थ के संबंध को जान सकेंगे।
- अर्थ परिवर्तन की विभिन्न दिशाओं से परिचित होंगे।
- अर्थ परिवर्तन के विविध कारणों को भी जानेंगे।
- अर्थ परिवर्तन को पूरी तरह आत्मसात कर अपने शब्दों में व्यक्त कर पाएँगे।
- अर्थविज्ञान के इतिहास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अर्थ का महत्व जान सकेंगें।

10.1 प्रस्तावना

भावों के संप्रेषण का भाषा अत्यंत ही अनिवार्य तत्व है। भाषा के अभाव में हम सब पंगु हैं भाषा के साथ ही हमारा विकास होता है। भाषा में शब्द और शब्द में अर्थ दोनों ही अपने आप में महत्वपूर्ण है क्योंकि उस शब्द की सार्थकता तभी है जब वह सटीक अर्थ में प्रयुक्त हो। अतः प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम शब्द और अर्थ के संबंध को जान पाएँगे तथा ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ होती है जब अर्थों में परिवर्तन हो जाता हैं। अर्थ परिवर्तन के क्या कारण हो सकते हैं वह भी आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

नामकरण

अर्थविज्ञान अथवा शब्दार्थ–विज्ञान। हिंदी में अभी कोई एक शब्द इस विज्ञान के लिए रूढ़ नहीं हुआ है। तीन शब्द प्रयोग में आ रहे हैं –अर्थातिशय, अर्थविचार और शब्दार्थ–विज्ञान। अंतिम शब्द सबसे अधिक व्यावहारिक और सरल मालूम पड़ता है, तो भी हमने 'अर्थविचार' नाम को अपनाया है क्योंकि इसका प्रयोग हम पहले कर चुके हैं। अंत में जाकर तो वही शब्द स्थिर रहेगा, जिसका व्यवहार अधिक होने लगेगा।

सच पूछा जाय, तो अभी अँगरेजी, फ्रेंच आदि पाश्चात्य भाषाओं में भी इस विज्ञान का नाम स्थिर नहीं हो सका है। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न नाम चलाने का यत्न किया है।यदि इसका ठीक और स्पष्ट भाषांतर किया जाय तो 'मानेतत्व' अथवा 'माने–विचार' कहना उचित होगा, ऐसा कई लेखकों[1] का कथन है। तथापि हम जैसा कह चुके हैं। शब्दार्थ–विज्ञान अथवा अर्थविचार नामों का ही व्यवहार करेंगे।

10.2 अर्थविज्ञान का इतिहास

विषय के रूप में 'अर्थविज्ञान' नया विषय है। प्रारम्भ में अनेक भाषाशास्त्रियों ने इसे दर्शन का विषय कहकर भाषाविज्ञान मे रखने पर आपत्ति की थी। परन्तु अब यह भाषाशास्त्र का एक अंग बन गया है। भारतवर्ष में शब्द और अर्थ का विवेचन दर्शनशास्त्र का विषय रहा है। न्यायदर्शन और मीमांसादर्शन में शब्दशक्ति, शब्दार्थज्ञान, स्वतःप्रामाण्य व परतःप्रामाण्य आदि का गहन विवेचन हुआ है। वैदिक साहित्व में इन्द्र, वृत्र, वृत्रहा, नदी, उदक, तीर्थ आदि शब्दों की निरूक्ति (Etymology) मिलती हैं। ऋग्वेद में अर्घ के महत्व पर कुछ मन्त्र हैं। यॉस्ककृत निरूक्त ही अर्थविज्ञान का सर्वप्रथम भारतीय ग्रन्थ है। जिसमें निर्वचन के नियम, अर्थ का महत्व, पदों का निर्वचन , प्रकरण आदि का महत्व बताया गया है। इसके पश्चात् पतंजलिकृत 'महाभाष्य' और भर्तहरि–कृत 'वाक्यपदीय' इस विषय के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। अर्थविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले पाश्चात्य विद्वान् हैं– फ्रेंच विद्वान् मिशेंल ब्रेआल, जर्मन विद्वान पाल के रीजिंग, ए0 बेनरी, पोस्टगेट, ब्रुगमान, स्वीट आदि।

10.3 अर्थ का महत्व

आचार्य पाणिनी ने भाषा का सार 'अर्थ' माना है। अतएव 'अर्थवान्' या अर्थसंज्ञक शब्दों को ही 'प्रातिपदिक' (मूल संज्ञाशब्द या प्रकृति) माना है–

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।

यॉस्क ने अपने ग्रन्थ 'निक्त' अर्थात् निर्वचन, निरूक्ति (Etymology) का आधार ही अर्थ को माना है। अर्थ–ज्ञान के बिना निर्वचन असंभव है।

अर्थनित्यः परीक्षेत।

यास्क ने कई स्थानों पर अर्थ का महत्व घोषित किया है। उनका कथन है कि जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता, वह ठूँठ है, भारवाहक पशु है। जो अर्थ जानता है, उसे ही समस्त कल्याण प्राप्त होता है। वही ज्ञान की ज्योति से पापों को नष्ट करके ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।

योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमष्नुतेनाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।

पतंजलि ने भी महाभाष्य में यही भाव व्यक्त किया है कि– 'अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूलपाठ के रूप में दोहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता है, जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन'।

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव षब्द्यते।

अनग्नाविव षुश्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'अर्थज्ञ' को अजेय योद्धा बताया गया है और अर्थज्ञानहीन को बिना दूधवाली गाय एवं फल–फूलहीन वाणी का संग्रहकर्ता बताया है–

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेशु।

अधेन्वा चरित माययैश वाचं षुश्रुवाँ अफलामपुश्पाम्।।

अर्थ वाचः पुशपफलमाह।

इससे स्पष्ट है कि भाषा की सार्थकता अर्थ से है। अर्थ ही भाषा का सर्वस्व है। अर्थहीन भाषा सन्तानहीन स्त्री के तुल्य है।

10.4 शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

संकेतग्रह—शब्द और अर्थ में कोई सम्बन्ध है या नहीं? यह प्रश्न स्वाभाविक है। 'गाय' कहने से 'गाय' पशु अर्थ ही क्यों लिया जाता है? अश्व आदि अन्य पशु क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक सार्थक शब्द किसी अर्थ (वस्तु) विशेष का बोध कराता है। कौन सा शब्द किस अर्थ का बोध कराता है, यह संकेतग्रह पर निर्भर है। यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ को संकेतित करता है। प्रत्येक भाषा में इस शब्द का यह अर्थ होगा, यह संकेतित है। यह संकेत सामान्यतया स्वेच्छा—जन्य या यादृच्छिक (यदृच्छा—जन्य) होता है। प्रारम्भ में कोई व्यक्ति किसी विशेष अर्थ में किसी शब्द का प्रयोग करता है। बाद में वह शब्द उस समाज या उस भाषा में लोकप्रिय हो जाता है। वही उस शब्द का संकेतित अर्थ माना जाता है। एक ही शब्द (या ध्वनि—समूह) विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ बताता है— अंग्रेजी Know (नो, जानना) संस्कृत और हिन्दी में निषेधार्थक 'नो' माना जायेगा, Knee (नी, घुटना) संस्कृत के अनुसार 'नी' (ले जाना) होगा। अतः यह माना जाएगा कि किसी एक ध्वनि का कोई एक अर्थ नहीं है। किसी शब्द से किसी अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करना 'संकेतग्रह' है। इसी प्रकार किसी ध्वनि—समूह से कि वस्तु का सम्बन्ध स्थापित करना या बोध कराना 'संकेतगह' है। यह संकेतग्रह लोक—व्यवहार है।

.5 अर्थ का लक्षण

अर्थ के अनेक लक्षण दिए गए हैं। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में 18 और ओग्डेन एवं रिचार्ड्स ने Meaning of Meaning में अर्थ के 16 लक्षण दिए हैं। भर्तृहरि ने संक्षेप में अर्थ का सुन्दर लक्षण दिया है कि— '**शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं।**' अर्थ का अन्य लक्षण नहीं है।

यस्मिस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।

तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।।

इससे स्पष्ट है कि अर्थ का सामन्य लक्षण 'प्रतीति' है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द को सुनकर कुछ अर्थ समझता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति 'प्रतीति' ही उसका अर्थ होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक भाषा में एक ही अर्थ के लिए पृर्थक्—पृथक् शब्द हैं। शब्दों के अर्थ स्वाभाविक नहीं, अपितु सांकेतिक एवं यदृच्छामूलक हैं। एक ही शब्द का विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ होता है। प्रत्येक भाषा का वक्ता और श्रोता अपनी भाषा में संकेतित अर्थ को ही ग्रहण करता है।

10.6 अर्थज्ञान प्रक्रिया

ज्ञान, प्रत्यय या प्रतीति भाषा का मानसिक पक्ष है। मन में विचार उठते हैं, वक्ता शब्दों के द्वारा उन्हें प्रेषित करता है, श्रोता कान से उन शब्दों को सुनता है, मन को उनके अर्थों की प्रतीति होती है। इस प्रकार भाषा का उद्गम और अर्थ—ज्ञान (अर्थावगम) —

रूपी परिणति दोनों भाषा के मानसिक पक्ष हैं। भाषा वक्ता से लेकर श्रोता तक, आदि से अन्त तक, मानसिक पक्ष में अनुस्यूत है।

अर्थज्ञान के दो साधन– अर्थ का ज्ञान प्रत्यय या प्रतीति के रूप में होता है। इस प्रतीति या ज्ञान के दो साधन हैं– (1) आत्म–प्रत्यक्ष (स्व–प्रतीति या आत्म–अनुभव), (2) पर–प्रत्यक्ष (पर–अनुभव)।

1) **आत्म–प्रत्यक्ष**– आत्म–प्रत्यक्ष का अर्थ है– स्वयं किसी वस्तु आदि को अपनी आँखों आदि से देखना या अनुभव करना। जैसे–मनुष्य, स्त्री, गाय, अश्व, पक्षी आदि को देखकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करना। इसी प्रकार संतरा, नींबू आदि का रस स्वयं प्रामाणिक और स्थायी होता है। आत्म–प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं– (क) बाह्य–इन्द्रिय–जन्य (ख) अन्तरिन्द्रिय–जन्य

   क) **बाह्य–इन्द्रिय–जन्य**–बाह्य इन्द्रियाँ हैं– आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा। आँख से देखी हुई वस्तु, नाक से सूँघी हुई गन्ध, कान से सुना हुआ शब्द, त्वचा से छुआ हुआ पदार्थ और जीभ से चखा हुआ स्वाद, बाह्य–इन्द्रिय–जन्य ज्ञान या अनुभव है। इनका ज्ञान और इनकी प्रामाणिकता इन्द्रियों ने स्वयं प्रत्यक्ष की है।

   ख) **अन्तरिन्द्रिय–जन्य ज्ञान**– अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरण मन है। कुछ सूक्ष्म चीजों का ज्ञान बाह्य इन्द्रियाँ नहीं कर पातीं, उनका ज्ञान मन करता है। जैसे–सुख या दुःख का अनुभव, शोक और क्रोध का अनुभव, भूख–प्यास का अनुभव आदि। शोक, दुःख, हर्ष, क्षोभ आदि का अनुभव व्यक्ति स्वयं मन से करता है। यह अन्तरिन्द्रिय–जन्य आत्म–प्रत्यक्ष है। अन्तरिन्द्रय से होने वाला प्रत्यक्ष सूक्ष्म होने के कारण कम स्पष्ट और कुछ अंश तक अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होता है।

2) **पर–प्रत्यक्ष**–पर–प्रत्यक्ष का अर्थ है– जिसे पर या दूसरे ने देखा है। जिन देशों, स्थानों, पर्वतों, समुद्रों आदि को हमने स्वयं नहीं देखा है, उनका ज्ञान हम दूसरों के प्रत्यक्ष से करते हैं, जिन्होंने स्वयं उसे देखा है। पर–प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम भूगोल में सभी देशों, नगरों, नदियों, समुद्रों, दर्शनीय स्थलों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर–प्रत्यक्ष में ही आप्तवाक्य, आप्त–वचन या प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन भी आते हैं। अतएव वेद, शास्त्र, स्मृतियों आदि से हम पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, मोक्ष, ईश्वर,जीव ,आत्मा–परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

अर्थविज्ञान का विषय

अब यह विचार करना चाहिए कि इस विषय के अंतर्गत क्या–क्या आता है। कई लोग समझते हैं कि शब्दों की ऐतिहासिक व्युत्पत्ति का ही दूसरा नाम अर्थविचार है अर्थात् व्युत्पत्ति शास्त्र और अर्थविचार पर्याय हैं। दोनों प्रकार के विवेचनों में बहुत सी बातें समान होने से यह भ्रम हो जाता है, पर वास्तव में दोनों एक नहीं हो सकते। व्युत्पत्तिशास्त्र ध्वनि, रूप और अर्थ तीनों का विचार करके शब्दों का इतिहास रचता है, पर अर्थविचार शब्दों के अर्थ और अर्थविचारसे ही अपना संबंध रखता है। व्युत्पत्ति विद्या व्याकरण के समान एक कला है। पर, अर्थविचार भाषाविज्ञान के समान विज्ञान है। इसी से व्युत्पत्ति–विद्या का विद्यार्थी केवल आवश्यकतानुसार अर्थों तथा अर्थविकारों का अध्ययन करता है। अर्थविचार करने वाला उन अर्थों तथा अर्थविकारों के कारणों तथा नियमों का अध्ययन करता है। इसी से अर्थविचार का मुख्य विषय शब्दों की व्युत्पत्ति और उनकी ऐतिहासिक व्याख्या नहीं है। उसका विषय है, भाषा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा सिद्धांत प्रतिपादन। जैसा कि प्रो. अरटल ने कहा है अर्थविचार के मुख्य प्रश्न ये हैं–पहला प्रश्न यह है कि किसी अमुक भाषा ने अपने भाव

और विचार किस प्रकार किन–किन साधनों से अभिव्यक्त किए हैं? इसका भी विचार एक व्यक्ति की दृष्टि से करना होगा, दूसरा प्रश्न है कि वही एक रूप कितने अर्थों का बोध कराने में समर्थ है? और तीसरा प्रश्न है कि वही एक अर्थ कितने भिन्न–भिन्न रूपों में आ सकता है ?

अर्थविचार के अंतर्गत और भी अधिक प्रश्न आ सकते हैं; जैसे, क्यों किसी शब्द को अर्थबोध कराने की शक्ति मिलती है? किस प्रकार शब्दों की शक्ति घटती–बढ़ती है? वह 'शक्ति' है क्या? मनुष्यों में वह कौन–सी शक्ति है, जो इस शब्द व्यापार अथवा शब्द–शक्ति से संबंध रखती है? इत्यादि।

यदि भारतीय दृष्टि से इस अर्थविचार का विषय निर्धारित करें, तो दो बातें सामने आती हैं। यहाँ पर निरुक्त–विद्या और शब्द–शक्ति मीमांसा ऐसे दो विषय थे,पर आजकल के अर्थविचार में दोनों का ही एक प्रकार से समावेश हो जाता है। यद्यपि कुछ विद्वान् निर्वचन और व्युत्पत्ति को भी अर्थविचार का अंग मानते हैं, तथापि अधिक विद्वान् केवल उन नियमों और सिद्धांतों को ही अर्थविचार का विषय मानते हैं, जिनसे अर्थों और अर्थविकारों के अध्ययन में हमें सहायता मिलती है।

10.7 अर्थों के अध्ययन में उपयोगी नियम–

10.7.1 बुद्धिनियम और ध्वनिनियम

पहले हमें भाषा के बुद्धिनियम और ध्वनिनियम का भेद और बुद्धिनियम और अर्थविचार का भेद समझ लेना चाहिए। इन दोनों के विवेक से हमारा विषय सर्वथा स्पष्ट हो जायगा। जिस प्रकार ध्वनिनियम देश और काल की सीमा के भीतर कार्य करते हैं, उसी प्रकार बुद्धिनियम सीमा के भीतर नहीं रहते। वे स्वतंत्र होकर चाहे जितनी भाषाओं तथा कालों में व्यापक रूप से लग सकते हैं। यदि विचार किया जाय, तो नियम अथवा कानून शब्दों का सच्चा अर्थ यहाँ बौद्धिक नियमों में नहीं घटता है; क्योंकि ये नियम कोई अपवाद–रहित, सर्वव्यापी, सदा सत्य निकलनेवाले कानून नहीं होते। 'इन नियमों का अर्थ है कुछ व्यवहारों और व्यापारों में पाए जाने वाले स्थिर संबंध।

शब्द के संबंध

किसी भी शब्द का जब तक ध्वन्यात्मक विवेचन होता है, तब तक हम उसके उच्चारण की ओर देखते हैं और यह देखते हैं कि उस शब्द का अमुक भाषा में अमुक काल में ऐसा उच्चारण था और अमुक कारण अथवा कारणों से उच्चारण में विकार आया। इस प्रकार के उच्चारण विकारों अथवा ध्वनिविकारों से संबंध रखनेवाले नियम ध्वनिनियम कहलाते हैं। उच्चारण को अलग करके देखा जाय, तो शब्द के दो प्रकार के संबंध रहते हैं –शब्द का एक संबंध होता है अपने वाक्य से और दूसरा संबंध होता है उस अर्थ (अथवा चीज) से, जिसका वह शब्दबोध कराता है। इन दो प्रकार के संबंधों से ही शब्द कुछ कहने योग्य होता है, समर्थ और शक्तिमान् होता है। यदि इन संबंधों को हटा लिया जाय, तो शब्द में कुछ रह ही नहीं जाता, वह विनिमय और व्यवहार कर ही नहीं सकता।

इन दोनों संबंधों को दूसरे शब्दों में अन्वय और शक्ति कहते हैं और दोनों का साधारण ज्ञान हमें यथाक्रम व्याकरण और कोष से होता है। व्याकरण में मुख्यतः अन्वय–द्योतक अंगों, निपातों अथवा शब्दों का विवेचन रहता है। गौण रूप से इसमें समास, कृदंत आदि के रचनात्मक प्रत्यय भी आ जाते हैं। कोष में शब्द और उसके वाच्य–अर्थ की व्याख्या रहती है। साधारणतया इसी के सहारे विद्यार्थी शब्द और अर्थ के अन्य 'स्थिर

संबंधों' की भी खोज कर लेता है। इन द्विविध संबंधों के विवेचन करने का प्रयोजन यह है कि हम रूपमात्र और अर्थमात्र का भेद कर सकें। भाषा के जो अंग अथवा अंश अन्वय–संबंध का बोध कराते हैं, वे रूप–मात्र कहे जाते हैं और जो शब्दार्थ–संबंध अर्थात् 'शक्ति' का बोध कराते हैं, वे अर्थ–मात्र कहलाते हैं। जैसे 'राम ने हमसे कहा था' इस वाक्य में तीन रूप हैं –1. राम ने, 2. हमसे, 3. कहा था। अब इनमें से 'ने','से' और 'आ था' रूप–मात्रा हैं और 'राम', 'हम' और 'कह' अर्थमात्रा हैं। रूपविचार में रूप–मात्रों का और अर्थविचार में अर्थमात्रों का विचार होता है।

बौद्धिक नियम और अर्थविचार

दूसरी बात है बुद्धिगत नियमों और अर्थविचार का भेद। जब अर्थ के अनुसार अर्थों में परिवर्तन होता है, तब उन विकारों का बुद्धिगत कारण होता है। उन कारणों का विचार करके जो नियम स्थिर किए जाते हैं, वे बौद्धिक नियम कहे जाते हैं। जब केवल अर्थों में विकार आने की तथा उन विकारों के कारणों की विवेचना होती है, तब वह अर्थविचार कहलाता है। आगे के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायगा। हम उदाहरण अधिक हिंदी के ही देंगे, पर कहीं–कहीं तुलना के लिए संस्कृत, अँगरेजी, बँगला, मराठी आदि के शब्द भी देने का यत्न करेंगे।

बौद्धिक नियम

1. विशेष भाव का नियम –जब एक अर्थ (भाव अथवा विचार) को प्रकट करने के लिए अधिक शब्द प्रयुक्त होते हैं और फिर कारणवश शब्द कम हो जाते हैं, तब इस विकार का कारण विशेष भाव, माना जाता है। अनेक से खिंचकर एक की ओर विशेष भाव रखने की इस प्रवृत्ति से शब्दों तथा शब्दार्थों का प्रायः ह्रास होता है। यदि एक ही व्याकरणिक संबंध दिखाने के लिए अनेक प्रत्ययों का प्रयोग होता है, तो धीरे–धीरे कुछ दिनों में उन अनेक प्रत्ययों का काम दो अथवा एक प्रत्यय से ही चलने लगता है। विशेष भाव के कारण इस प्रकार अनेक प्रत्ययों ह्रास अथवा लोप हुआ करता है। प्राचीन भाषाओं में तारतम्य का बोध प्रत्ययों से हुआ करता था। ये प्रत्यय आदिकाल के बहुसंख्यक और बहुत प्रकार के थे। धीरे–धीरे ये कम होते गए। संस्कृत में पहले तर, तम, ईयस, इष्ठ दो प्रकार के प्रत्यय इस अर्थ में आते थे, पर पीछे से प्रयोग के नाते दूसरे प्रकार के प्रत्यय विजयी होते गए, जैसे –गरीयस्, लघीयस्, द्राधीयस्, महीयस्, वरीयस्, श्रेयस्, प्रेयस् और गरिष्ठ, लघिष्ठ, द्राघिष्ठ, महिष्ठ, वरिष्ठ, श्रेष्ठ, प्रेष्ठ इत्यादि। दूसरी ओर संख्यावाचकों में तम के संक्षिप्त रूप 'म' की विशेषता देख पड़ती है। पहले प्रथम, पंचम, सप्तम के समान रूप ही व्यवहार में आते हैं। ईयसवाले, रूप तो दो ही दिख पड़ते हैं, यथा –द्वितीय और तृतीय। इसी प्रकार इष्ठ का 'थ' भी केवल चतुर्थ और श्रेष्ठ इन्हीं दो रूपों में बच गया। इस प्रकार तारतम्य का बोध कराने में एक प्रत्यय ने और संख्या का बोध कराने में दूसरे ने विशेषता प्राप्त कर ली है। इसे ही कहते हैं विशेष भाव का नियम।

आजकल की देश–भाषाओं में इस प्रकार के तारतम्यसूचक प्रत्यय लुप्त हो गए हैं। उनका कार्य कुछ शब्दों से चल जाता है; जैसे बँगला चेये, गुजराती थी, हिंदी अपेक्षा इत्यादि। मराठी, बँगला और हिंदी तीनों में ही 'अधिक' शब्द से तुलना का बोध होता है। हिंदी का 'और' तथा बँगला का 'आरो' भी प्रायः इसी अर्थ में आता है।

देश–भाषाओं के तत्सम शब्दों में ईयस् आदि प्रत्यय पाए जाते हैं, पर उनका विचार तो भाषा के व्याकरण में होता ही नहीं और दूसरे यदि विचार किया भी जाय, तो भी उनके प्रत्ययों का पृथक् अस्तित्व ही नहीं माना जा सकता। संस्कृत वैयाकरण घनिष्ठ, श्रेष्ठ, उत्तम आदि के प्रत्ययों का अर्थ करता है। पर, हिंदी का प्रयोक्ता इन बने–तैयार

शब्दों को ही लेकर आगे बढ़ता है। वह कहता है (1) वह संबंध और भी अधिक घनिष्ठ है; (2) मोहन विद्या में अधिक श्रेष्ठ है; (3) उसका काम तुमसे भी अधिक उत्तम है। इस प्रकार हिंदी, बँगला आदि में अब इस भाव के प्रत्यय बिलकुल नहीं रह गए हैं। यह प्रवृत्ति तो संस्कृत तक में पाई जाती है। जैसे श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम्। एक प्रकार की व्याकरणिक छापवाले सभी शब्दों में से प्रायः एक शब्द अपने सजातीयों से अलग हो जाता है और उस व्याकरणिक भाव को प्रकट करनेवालों में प्रधान बन जाता है। इस प्रधानता को पाने के साथ ही वह अपना व्यक्तित्व भी खो बैठता है। वह अब एक व्याकरणिक साधनमात्रा रह जाता है। बँगाल में अधिक, आरो, चेये, बेशी इत्यादि शब्द अर्थपक्ष के विचार से 'तर' प्रत्यय के बराबर ही माने जाते हैं। ऐसे शब्दों का स्वतंत्रा अर्थ प्रायः लुप्त हो जाता है और यह गौण अर्थ ही सामने आ जाता है। जैसे 'बेशी खाओआ' (बँ.), अधिक खाना, कॅम खॅर्च आदि प्रयोगों में इन शब्दों का मूल अर्थ है पर 'बेशी छोटो' किंवा 'बेशी बॅड़' (बँ.) 'यह घर उससे कहीं अधिक छोटा है' के समान वाक्यों में बेशी और अधिक केवल तारतम्य का बोध कराते हैं।

प्राचीन काल की विभक्तियों के स्थान में परसर्गों का आना विशेष भाव, के नियम का दूसरा उदाहरण है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन के समान प्राचीन भाषाओं के कर्त्ता, कर्म, करण आदि के कारक संबंधों का बोध ऐसे प्रत्ययों द्वारा हुआ करता था, जो उन शब्दों में अभिन्न रूप से मिले रहते थे। जब इन कारकों से मनःकल्पित सभी संबंधों का बोध स्पष्ट रूप से न हो सका, तो वक्ता लोग कुछ क्रिया–विशेषणों को भी साथ–साथ जोड़ने लगे। संस्कृत में पहले उपसर्गों का क्रिया से ऐसा ही घनिष्ठ संबंध था। वे वैदिक काल में क्रिया–विशेषण के समान प्रयुक्त होते थे, जैसे –प्रतित्यं चारुमध्ववरं अग्न आगहि। अस्माकमुदरेषु आ इत्यादि। पीछे से लौकिक संस्कृत में वे ही क्रिया–विशेषण दो मार्गों से चले। एक ओर वे संबंधवाचक अव्यय बन गए और दूसरी ओर क्रियाओं में अव्यवहित रूप से मिल गए।

बँगला, हिंदी आदि देशभाषाओं के परसर्गों का इतिहास इस 'विशेष भाव' की ही कहानी है। तृतीया के स्थान में 'के द्वारा' द्वितीया के स्थान में 'की सेवा में' अथवा 'पास' चतुर्थी के स्थान में 'के लिए', 'के वास्ते' आदि के समान प्रयोग तो साधारण हैं, क्योंकि वे निजी कारणों से आए हैं। पर, ने, को, से, में आदि विभक्तियाँ ही वियोग और विशलेषण द्वारा विशेष भाव की प्रवृत्ति प्रकट कर रही हैं।[1]

अँगरेजी के संबंध कारकवाले 'चिह्न' S में भी इसी विशेष भाव का सिद्धांत पाया जाता है। विभक्ति का यह 'चिह्न' इतना स्वतंत्र हो गया है कि वह दो–तीन शब्दों के बाद भी रखा जाता है; जैसे The King of England's Tower, Asqnith and Lloyd George's Ministry बँगला में भी उसी प्रकार संबंधसूचक 'र', कर्मवाचक 'के' और अधिकरण–बोधक 'ते' चिह्नों का स्वतंत्र शब्दों के समान प्रयोग होता हें। जैसे –कलिकाता, वॅर्धमान पाटना उ अलाहाबादेर लोक। राम, श्याम ओ जॅदू के दाओ (अर्थात् दो) कृष्णनगर ओ कलिकाताते देखिबॅ। यदि हिंदी के परसर्गों को देखा जाय तो उनकी भी यही दशा है। 'उन्होंने' में 'ने' विभक्ति मिली हुई है पर वही 'ने' दूर रहकर भी काम करता है जैसे राम, श्याम और कृष्ण ने।

भारतीय देश–भाषाओं के पारिवाचिक प्रयोग भी इसी विशेष भाव के कारण उत्पन्न हुए हैं। जैसे –हिंदी के आता हूँ, गया था, और बँगला में गियाछि, जाइतेछि आसियाछिलाम। इस संबंध में संस्कृत के आस, चकार और बभूव से बननेवाले रूप विचारणीय हैं। ये व्यवहिति की नहीं, संहिति की प्रवृत्ति प्रकट कर रहे हैं। दातास्मि के समान प्रयोग अवश्य ही अर्वाचीन रहे होंगे।

10.7.2 भेद (भेदीकरण) का नियम

धात्वर्थ के अनुसार अथवा किसी ऐतिहासिक कारण से जो शब्द एक बार पर्याय रहते हैं या देखने में पर्यायवाची मालूम होते हैं, वे ही शब्द जिस व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा भिन्न–भिन्न अर्थों में आने लगते हैं, उसको कहते हैं भेदीकरण अथवा भेदभाव का नियम। बड़ी सीधी बात है कि भाषा का प्रश्न मूल में समाज का प्रश्न है। जिस प्रकार समाज में उन्नति का अर्थ है भेद, उसी प्रकार भाषा ज्यों–ज्यों बढ़ती है, उसमें भी भेद–भाव बढ़ता है। उदाहरण के लिए हम दो बातें लेते हैं। पहले भाषा सीखने में बच्चा अभेद की नीति से काम लेता है, पर ज्यों–ज्यों बढ़ने लगता है, वह शब्दों और अर्थों में भेद करने लगता है। इसी प्रकार जो अल्पज्ञ विद्यार्थी कोष में एक अर्थ वाले शब्दों को रट लेने के बाद व्यवहार में अथवा साहित्य की भाषा में उनका प्रयोग देखता है, वह शीघ्र ही भेद–भाव का ज्ञान कर लेने पर विशेषज्ञ हो जाता है।

इतिहास में साधारण सी बात है कि जब मेल से अथवा लड़ाई से किसी प्रकार दो भिन्न–भिन्न भाषाओं अथवा बोलियों का सामना होता है, तब एक बार उन व्यक्तियों का शब्दभण्डार आपनें आप बढ़ जाता है। पर धीरे–धीरे उस बड़े भण्डार की व्यवस्था की जाती है; या तो कुछ शब्द अप्रयुक्त और अप्रसिद्ध हो जाते हैं अथवा पर्यायवाची शब्दों में थोड़ा अर्थ भेद कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में विदेशियों के आने से देशी भाषाओं में विदेशी शब्द बढ़े। मुसलमानों और अँगरेजों के साथ फारसी, अरबी और अँगरेजी के शब्द खूब बढ़े। पर आज उन सब शब्दों के अर्थ में पूरा भेद किया जाता है। समाज में पर्यायवाची शब्द तो कभी चलते ही नहीं। यदि एक शब्द के आगे बढ़ने पर दूसरा मरता नहीं, तो उसके अर्थ में कुछ न कुछ आंशिक भेद तो अवश्य ही कर लिया जाता है। डॉक्टर, वैद्य, हकीम और कविराज चारों ही पर्यायवाची शब्द हैं, पर हिंदी में चारों के अर्थ में स्पष्ट भेद हो गया है। डॉक्टर से एलोपैथी, होम्योपैथी अथवा प्रकृति–चिकित्सा के समान किसी आधुनिक प्रणाली के चिकित्सक का अर्थ लिया जाता है, वैद्य से सीधे आयुर्वेद जाननेवाले देशी चिकित्सक का बोध होता है; हकीम से यूनानी चिकित्सा वाले का अथवा किसी मुसलमान चिकित्सक का अभिप्राय निकलता है और कविराज का अर्थ होता है बंगाली चिकित्सक। कोई भी अँगरेजी का वक्ता इन चारों को डॉक्टर कह सकता है, उर्दू वाला चारों को हकीम कह सकता है, बंगाली कविराज सबका बोध करा सकता है और संस्कृतभाषी तो सबको वैद्य कहता ही है, पर आज हिंदी में चारों भाषाओं के शब्द आ गए हैं। इसी से यह भेदीकरण का नियम चला है। इसी प्रकार पाठशाला, मदरसा और स्कूल शब्दों में भी कैसा भेद देख पड़ता है। पाठशाला संस्कृत से संबंध रखती है; मदरसा उर्दू–फारसी से और स्कूल हिंदी–अँगरेजी से। कभी–कभी तो एक ही भाषा से आए पर्यायवाची शब्दों में भी बड़ा भेद हो जाता है। पाठशाला, विद्यालय, विद्यापीठ, सरस्वतीभवन आदि हिंदी में संस्कृत से ही आए हैं, पर आज विद्यापीठ आदि का नाम लेते ही श्रोता को राष्ट्रीय विद्यापीठ, महिला विद्यापीठ आदि के समान आधुनिक ढंग की संस्था का ध्यान आ जाता है, विद्यालय और सरस्वतीभवन से प्रायः संस्कृत की ही उच्च शिक्षा देनेवाली संस्थाओं का बोध होता है। पाठशाला शब्द बड़ा व्यापक हो गया है, वह सभी का बोध कराता है। इस प्रकार यद्यपि कन्या पाठशाला, कुमार पाठशाला, संस्कृत पाठशाला आदि प्रयोगों में पाठशाला शब्द जातिवाचक हो गया है, तो भी उसका रूढ़ार्थ संस्कृत की सामान्य शाला होता है। पाठशाला से छोटाई का बोध होता है और विद्यालय अथवा कॉलेज से बड़ी संस्था का बोध होता है। इसी प्रकार मास्टर और पंडित, लम्प और प्रदीप, बाजार और हाट आदि के समान पर्यायवाची शब्दों में भेद के नियम ने काम किया है।

ये विदेशी भाषाओं के आए हुए शब्दों के उदाहरण हैं, पर स्वयं उसी तत्सम शब्द से निकले तद्‌भव शब्द में भी यह भेदीकरण का नियम काम करता है, जैसे –पुस्तक और पोथी, कार्य और काज, धात्री और धाड़ी (बँ.) देवता और देया (बँ.), गर्भिणी और गाभिन इत्यादि। धाड़ी है तो धात्री का ही तद्‌भव रूप, पर वह बँगला में पशुओं के लिए ही प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार गाभिन शब्द भी पशु–पक्षियों के ही संबंध में आता है। यह शब्द बँगला, हिंदी, मराठी आदि कई भाषाओं में चलता है। जिस प्रकार तत्सम और तद्‌भव शब्दों में अर्थभेद हो जाता है उसी प्रकार तत्सम और देशी शब्दों में भी भेदीकरण का कार्य चलता है। उदाहरण के लिये 'बियाना' देशी शब्द है, वह प्रायः पशुओं के लिए आता है पर प्रसव करना अथवा होना स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होता है और अधिक शिष्ट–प्रयोग है।

सीधी बात तो यह है कि देशी, विदेशी, तद्‌भव आदि कहीं के भी शब्द हों, जब वे एकार्थवाचक हो जाते हैं, तब शीघ्र ही भेदीकरण का कार्य प्रारंभ हो जाता है। कुछ और उदाहरण लेकर इसे स्पष्ट करना चाहिए। बच्चों के लिए जो शब्द आते हैं, उन्हें देखना चाहिए। गाय के बच्चे को बच्छा, बछवा, बछिया या बछड़ा, घोड़े के बच्चे को बछेड़ा, भैंस के बच्चे को पड़वा, सुअर के बच्चे को छौना, भेड़ अथवा बकरी के बच्चे को मेमना, मछली के बच्चे को पोना, साँप के बच्चे को सँपोला और कुत्ते के बच्चे को पिल्ला कहते हैं। इसी प्रकार बँगला आदि सभी भाषाओं में भिन्न–भिन्न जीवों के बच्चों के लिए भिन्न–भिन्न शब्द आते हैं। अँगरेजी के child, calf, kid, cub आदि शब्द भी इसी कोटि के हैं।

समूह–वाचक शब्दों में भी अर्थभेद का अच्छा उदाहरण मिलता है, जैसे–मित्रों की टोली, भाषाओं की गोष्ठी, पशुओं का गल्ला, डाकुओं का गिरोह, देहातियों का झुण्ड, अहीरों का गोल, लड़ाकों की टुकड़ी, टिड्डियों का दल, बगुलों की पक्ति, जनता की भीड़ इत्यादि।

एक ही अंग के अनेक नामों में भी इसी ढंग का भेद होता है; जैसे–पीठ और पुट्ठा, कोख और पेट, नख और खुर, स्तन और थन, थूथन और नाक। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि धात्वर्थ और यौगिक अर्थ को महत्त्वहीन करनेवाली सबसे बड़ी प्रक्रिया भेदीकरण है। एक ही 'भू' धातु और एक ही उपसर्ग 'अनु' से बने 'अनुमान' और 'अनुभव' में कितना अर्थ–भेद हो गया है। ऐसे उदाहरण संस्कृत में सैकड़ों मिल सकते हैं। बुद्धि और बोध, श्राद्ध और श्रद्धा, वेद और विद्या जैसे शब्द एक ही धातु से निकले हैं और रूप में भी बहुत मिलते है, पर अर्थ–भेद कितना अधिक हो गया है।

मनुष्य का विचार और संस्कार जितना ही बढ़ता जाता है, यह अर्थभेद की प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है। यह प्रसिद्ध बात है कि भिन्न–भिन्न कोटि के व्यक्तियों के कारण एक ही व्यापार के लिए कई शब्दों का व्यवहार होता है। जैसे–देवता को चने का 'भोग लगाया' है, मैंने भी चना 'खाया' है, और उन महात्माओं ने भी चना 'पाया' है। इसी प्रकार हम लोग पूज्य और मान्य लोगों के 'दर्शन' करने जाते हैं और अपने मित्रों को 'देखने' जाते हैं अर्थात् सामान्य लोगों के बारे में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, उसका बड़े लोगों के लिए कभी नहीं होता। प्रभविष्णु व्यक्तियों के लिए प्रभविष्णु शब्दों का प्रयोग होता है। यदि किसी सामान्य मनुष्य की मृत्यु होती है, तो हम कहते हैं कि अमुक मनुष्य मर गया; पर किसी बड़े के बारे में कहना पड़ता है, तो हम कहते हैं कि उनका स्वर्गवास हो गया। रास्ते की धूल को धूल अथवा गर्द कहते हैं, पर जब पवित्रता का भाव रहता है, तब रज अथवा रेणु शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे–गुरु–चरण–रज, तीर्थ–रेणु इत्यादि।

नम्रता दिखाने के लिए भिन्न–भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे-आपका दौलतखाना, मेरा गरीबखाना, उन लोगों का घर; इन तीनों का अर्थ एक ही है। कभी–कभी दो पर्यायवाची शब्दों में एक शिष्ट बन जाता है और दूसरा अशिष्ट; जैसे दोस्त और यार। दोनों ही मित्रा के पर्याय हैं, पर हिंदी में 'यार' अशिष्टता का अर्थ देता है। उस्ताद और उस्तादजी एक होते हुए भी भिन्न अर्थ के वाचक हैं। बेहया और निर्लज्ज पर्याय हैं, पर लोग बेहया को अधिक बुरा समझते हैं। प्रणय और प्रेम में भी हिंदी ने बड़ा भेद कर लिया है। प्रणय केवल दांपत्य प्रेम को कहते हैं। सलाम, प्रणाम, नमस्कार, नमस्ते आदि सभी शब्दों का सामान्य अर्थ एक ही है, पर हिंदी में सलाम ब्राह्मणेतर जातियों में चलता है। प्रणाम बड़ों के प्रति और नमस्कार बराबरी वालों के प्रति किया जाता है। नमस्ते पुराना शब्द है, पर उसमें नवीन युग और सुधारवाद के भाव भरे समझे जाते हैं। इसी प्रकार आशीर्वाद देने के अनेक प्रकार हैं- आशीर्वाद, चिरंजीव, नारायण, हरिस्मरण आदि। यदि इन प्रणाम, नमस्कार के पर्यायों का संग्रह करके उनके अर्थ–भेद का अध्ययन किया जाय, तो बड़ा मनोरंजक शिक्षाप्रद मनोवैज्ञानिक लेख तैयार हो सकता है। जय जय, जय रामजी की, जय जिनेंद्रजी की, नमो नारायण, दंडवत्, पालागी, आदाब, शिव–शिव, जय गोपाल की, वाहे गुरु की इत्यादि न जाने कितने प्रयोग हैं पर सब में अर्थभेद भी है। अब थोड़ा भेद–प्रवृत्ति की सीमा का भी विचार कर लेना चाहिए।

1) जिन शब्दों में अर्थ–भेद होता है, उन्हें उस भाषा में पहले ही से विद्यमान रहना चाहिए। भेदीकरण विद्यमान सामग्री में ही काम करता है, वह कुछ नई सामग्री उत्पन्न नहीं करता।

2) दूसरी बात यह है कि पहले तो अर्थ–भेद स्पष्ट रहता है, पर जब संचय अधिक हो जाता है, तब फिर मानव–मन उन भेदों को भूलने लगता है, अंत में जाकर अनेक शब्दों का लोप हो जाता है। जैसे खाद्, भक्ष, अद्, अश् आदि में पहले भेद रहा होगा, पर अब नहीं है। भू और अस् अथवा स्पश् और हश् पहले अर्थ–भेद के कारण जीते थे, पर पीछे उनका भेद–भाव नष्ट हो जाने से उनके अनेक रूप भी नष्ट हो गए।

3) तीसरी बात यह है कि अर्थ–भेद का सभ्यता से संबंध रहता है। जो समाज जितना ही अधिक सभ्य होगा उसकी भाषा में अर्थ–भेद उतना ही अधिक होगा। हम लोग सात से भी अधिक रंगों के नाम लेते हैं, पर संथाल केवल दो रंग जानते हैं-काला और सफेद।

10.7.3 उद्योतन का नियम

उ

शब्दों के साथ लग गए, पीछे से वे उन्हीं लिंगों के द्योतक बन बैठे। संस्कृत के आ, ई आदि लिंगद्योतक प्रत्यय इसी प्रकार बने हैं। पहले गोपा (पुंल्लिग) और माला (स्त्रीलिंग) जैसे दोनों लिंग के प्रयोग चले। पर स्त्रीवाचक शब्दों में ही 'आ' अधिक पाए जाने से लोगों ने उसे स्त्रीप्रत्यय मान लिया।

वही स्त्रीप्रत्यय हिंदी में आकर दूसरे प्रकार के संसर्ग में पड़ने से पुंल्लिग और बड़प्पन का सूचक बन गया। धोती, गौरी, सती, मौसी, डोरी, किवाड़ी, घंटी, मटकी, पोथी आदि का बड़प्पन तथा पुरुषत्व प्रकट करना होता है, तो हम कहते हैं-धोता, गौरा, सता, मौसा, रस्सा, डोरा, किवाड़ा, घंटा, मटका, पोथा। सता, मौसा, डेरा आदि शब्दों में पुरुषत्व की भावना है।

कभी–कभी प्रकृति का एक अंश उद्योतन के द्वारा प्रत्यय बन जाता है, जैसे 'पश्चात्' प्रकृति है, उससे बना पाश्चात्य; पर पीछे से 'आत्य' ही प्रत्यय बन गया और अब हम पौर्वात्य और दाक्षिणात्य भी कहने लगे हैं। पाली में तस्स़अंतिकं मिलकर 'तस्सन्तिकं' रूप बना करता था, पर पीछे सन्तिकं संबंधसूचक प्रत्यय बन गया। इस प्रकार प्रकृति के अंशों में भी द्योतकता आ जाती है। अंग्रेजी में डेस्पाटिज्म (Despotism) और पेट्रिआटिजम (Patriotism) आदि शब्दों में 'इज्म' प्रत्यय है पर पीछे के 'टिज्म' ही प्रत्यय बन गया और 'ईगो' से इगोटिज्म जैसे शब्द बनने लगे। इसी प्रकार पिआनिष्ट (Pianist) और मैशिनिस्ट (Machinist) आदि शब्दों में 'इस्ट'प्रत्यय है, पर पीछे 'न' भी प्रत्यय में आ मिला और टुबैकोनिस्ट (Tobacconist) के समान शब्द–रचना होने लगी।

संस्कृत में तो ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पूरी की पूरी प्रकृति उद्योतन के द्वारा प्रत्यय बन गई है, जैसे गो–युगच् प्रत्यय। गोयुगल का अर्थ है गाय अथवा बैल का जोड़ा, पर संसर्ग से उसमें केवल जोड़ा प्रकट करने की शक्ति आ गई। अतः अब उष्ट्रगो–युगच् (एक जोड़ा ऊँट) के समान प्रयोग चलने लगे हैं। इस प्रकार अर्थ के अनुसार रूप बन जाया करते हैं।

10.7.4 विभक्तियों के भग्नावशेष का नियम

जब विभक्तियाँ ध्वनि–नियम अथवा अन्य किसी कारण से लुप्त हो जाती हैं, तब भी यह आवश्यक नहीं होता कि जनता के मन से भी उनका लोप हो जाय। इसी मनोवृत्ति के कारण प्रायःप्राचीन काल की कुछ अप्रयुक्त विभक्तियाँ भी भाषा में मिल जाया करती हैं। इस मनोवृत्ति का पोषण करके विभक्तियों को जीवित रखनेवाली तीन बातें होती हैं-(1) परंपरा, (2) वाक्य अथवा पद में शब्द का स्थान, और (3) उपमान, जो सहज ही दूसरी मिलती–जुलती रचनाओं से हमारी स्मरणशक्ति पर प्रभाव डाल देता है।

अगत्या, अर्थात् दैवात्, हठात् आदि पहले प्रकार के; गया वक्त, मुआ बैल, सोया आदमी आदि दूसरे प्रकार के; और गढ़ंत, पढ़ंत, लड़ंत आदि तीसरे प्रकार के उदाहरण हैं। गया, सोया आदि संस्कृत के गतः, सुप्तः आदि के तद्भव रूप हैं और गढ़ंत जैसे शब्द संस्कृत के कृदंतों के उपमान पर बने हैं। महंत, श्रीमंत आदि शब्द भी इसी प्रकार बने हैं।

कभी–कभी कुछ पुराने रूप केवल साहित्यिक भाषा अथवा बोलियों में पाए जाते हैं, जैसे घरे, पाठशाले, गाँवे, खरिहाने, खेते आदि में संस्कृत की सप्तमी जी रही है, पर प्रयोग अब बोलियों में ही अधिक होते हैं। सिर–माथे रखना और भूखों–मरना के समान प्रयोगों में जो विभक्ति के चिह्न हैं, वे दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं अर्थात् वे विभक्तियाँ अपने स्थान के कारण अभी तक बच रही हैं। भेद–नियम के समान ही इस विभक्तिशेष के नियम की भी सीमा है। जब अवशिष्ट विभक्तियाँ सर्वथा अप्रसिद्ध और

अप्रयुक्त हो जाती हैं, तब तो उनका नाश अवश्यंभावी हो जाता है। पर सामान्य नियम यही है कि पुरानी भाषा की बची विभक्तियों से नवीन भाषा की शोभा बढ़ती है। आर्ष प्रयोग की महिमा समझने वाले इस प्रवृत्ति और नियम को भली–भाँति समझ सकते हैं।

10.7.5 मिथ्या प्रतीति का नियम

कभी–कभी भ्रम से हमें जिस अर्थ का भान होने लगता है, वही अर्थ उस प्रत्यय अथवा शब्द में भी पीछे से स्थिर हो जाता है। जैसे अँगरेजी ऑक्सन (oxen)को आक्स का बहुवचनांत रूप समझते हैं परन्तु वास्तव में पहले संस्कृत उक्षन् के समान ही ऑक्सन (oxen) भी एँग्लोसैक्सन काल में एकवचन की प्रकृति है। इसमें कोई भी बहुवचन की विभक्ति नहीं है। पर, जब उसमें बहुवचन का भ्रम हुआ, तो लोगों ने उसमें से दो अंश निकाले-ऑक्स (एकवचन का रूप) और अन (en) बहुवचन का प्रत्यय। इस प्रकार वह भ्रम भी उत्पादक सिद्ध हुआ।

अँगरेजी का मोर (more)शब्द तुलनावाचक समझा जाता है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। पर, भ्रम होने का ही यह फल है कि 'मो'(mo)के समान प्रकृति की कल्पना की जाती है और उससे मोस्ट (most) भी बनाया जाता है। इसी प्रकार चेरीज, पीज आदि शब्द पहले एकवचन थे, पर भ्रम से वे बहुवचन मान लिए गए। इसी से अब चेरी और पी ये एकवचन बन गए हैं और 'ज' बहुवचन का चिह्न माना जाने लगा है। सिंग (Sing), सैंग (Sang), संग (Sung) समान रूपों में जो स्वरवैषम्य है, वह आजकल का द्योतक माना जाता है। वास्तव में ऐसा भ्रम से ही हुआ है। पहले स्वर और बल के कारण ही ऐसे रूप बन गए थे। पर, अब उनमें व्याकरण वाली द्योतकता आ गई है। इस प्रकार मिथ्या प्रतीति बहुत कुछ उत्पन्न कर डालती है।

कभी–कभी जहाँ विभक्ति अथवा प्रत्यय रहते हैं, उन पर ध्यान न जाने से एक दूसरे की भ्रांति (या मिथ्या प्रतीति) होती है। जैसे मैंने, विधान ने, अभी भी इत्यादि दुहरे प्रत्यय लगे हैं। 'काबुलवाला' के स्थान पर 'काबुलीवाला' और 'विविध' के स्थान पर 'विविध प्रकार' का प्रचलन भी इसी भ्रांति के कारण हुआ हे। 'गुलमेहँदी का फूल', 'गुलरोगन का तेल', 'दर असल में' आदि प्रयोग भी ध्यान देने योग्य हैं।

10.7.6 उपमान का नियम

रूप ग्रीक के भेरो और लैटिन के फेरो जैसे रूपों में स्मारक माने जा सकते हैं। इस प्रकार उपमान–भेद को मिटाने और नए शब्दों को सरल से सरल ढंग से गढ़ने में सहायक होता है। वह शब्दों के विनाश और उत्पत्ति दोनों का बीज बनता है।

10.7.7 नये लाभ

जिस प्रकार भाषा की हानि होती है, उसी प्रकार उसे नई वस्तुओं का लाभ भी होता है। एक ओर कुछ अंगों और अंशों का विनाश है और दूसरी ओर नए रूपों और अर्थों का विकास होता है। यद्यपि हानि की अपेक्षा लाभ कम ध्यान में आता है तथापि प्राप्ति होती है। यह विचार करनेवालों को मालूम हो जाता है। उदाहरण के लिए ब्रेअल ने अव्यय कृदंत (Infinitive),कर्मवाच्य और क्रिया–विशेषणों के विकास को नई प्राप्ति माना है। क्रिया–रूपों में अव्यय कृदंत सबसे अधिक अर्वाचीनहै। यह वास्तव में सबसे अधिक सामान्य रूप है; जिसमें पुरुष, वचन, काल, वाच्य आदि किसी का बंधन नहीं रहता। इसी प्रकार कर्मवाच्य भी पीछे से आत्मनेपद के रूपों को लेकर आगे बढ़ा है। सभी भारोपीय भाषाओं के कर्मवाच्य का विकास बाद में हुआ है।

क्रिया–विशेषण भी अभी हाल की चीज है। कोई भी संज्ञा अथवा विशेषण जब अव्यय बनकर विभक्तियों रहित होता है, तब यह क्रिया–विशेषण बन जाता है। यह तो हम लोगों के सामने भी हुआ करता है। जैसे चिरम्, अगत्या आदि। हिंदी, बँगला आदि में काल और परसर्ग भी अर्वाचीन संपत्ति है। संस्कृत में उपसर्ग भी धीरे–धीरे संबंधवाचक अव्यय बने हैं।

10.7.8 अनुपयोगी रूपों का विनाश

जब कारणवश एक ही अर्थ के वाचक कई शब्द काम में आने लगते हैं तब स्वभावतः लोग कुछ रूपों की ओर विशेष रुचि दिखाते हैं। कभी यह शब्दों के निजी मूल्य के कारण होता है और कभी व्यापार तथा व्यवहार के अनुरोध से भी ऐसा होता है कि कुछ शब्द अधिक प्रिय हो जाते हैं। किसी भी प्रकार से, जब कुछ शब्द अथवा शब्दरूप अनुपयोगी हो जाते हैं, तब आपने आप उनका लोप होने लगता है। और, कभी–कभी तो ऐसा होता है कि दो–तीन शब्द मिलकर एक शब्द की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में काम करते हैं, जैसे संस्कृत में देखना क्रिया के लिए वैदिक काल में दो धातुएँ थीं 'पश्य' और दृश्। बाद में दोनों एक बन गईं। अब 'पश्य' आदेश माना जाता है और केवल कुछ रूपों में उसका ग्रहण होता है और शेष कालों में दृश् के ही रूप चलते हैं। इसी प्रकार गच्छति, जगाम, अगमत् आदि की भी दशा है।

संज्ञा शब्दों के रूपों के बारे में जब हम कई विभक्तियों में एकरूपता पाते हैं, तो इसे भी विनाश का ही परिणाम समझना चाहिए।

[2]

अभी तक जिन नियमों की चर्चा हुई है, उनके उदाहरणों पर विचार करने से प्रकट हो जाता है कि उनमें अर्थ–प्रकाशन की प्रवृत्ति ने रूपों और रूप–मात्रों को जन्म दिया है तथा एक विशेष प्रकार की लोकबुद्धि से अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए उन शब्दों को संचालित किया है। अब हम शब्द के अर्थों के बढ़ने, घटने, मिटने आदि की व्याख्या करेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

10.8 अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ

10.8.1 अर्थापकर्ष

अर्थापकर्ष वे ही शब्द जो पहले अच्छे अर्थ में आते थे, कारणवश बुरे अर्थ में आने लगते हैं और तब उनका वही मुख्यार्थ बन जाता है। उदाहरणार्थ पहले सत् और असत् का अर्थ था 'विद्यमान' और 'अविद्यमान'। उनमें पीछे से भले और बुरे का अर्थ आ गया। यही अर्थ हमारे हिंदी में भी आया है। इसी प्रकार 'इतर' का सामान्य अर्थ होता था 'दूसरा' पर अब उससे छोटेपन और अल्पज्ञता का भाव टपकता है।

अतिशयोक्ति के कारण प्रायः शब्दों का जोर कम हो जाता है, जैसे सत्तानाश, सर्वनाश, निर्जीव जीवन, विराट् सभा, प्रलयंकारी दृश्य। इन शब्दों का अक्षरार्थ नहीं, प्रत्युत सामान्य अर्थ लिया जाता है अर्थात् उनका सच्चा बल अब कम हो गया है।

जिन अर्थों और भावों को समाज गोपनीय समझता है, उनको प्रकट करने वाले अच्छे शब्द भी अपना गौरव खो बैठते हैं, जैसे संस्कृत अथवा हिंदी के सहवास, प्रसंग, समागम आदि सामान्य अर्थ में आते हैं। हिंदी में दोस्ती और यारी का अर्थ किस प्रकार पहले अच्छा था और अब बुरा हो गया है, सबको मालूम है। कहीं–कहीं की बोलियों में शब्दों के बुरे अर्थ हो जाया करते हैं। जैसे गुरु और राजा साहित्यिक भाषा में ठीक माने जाते हैं पर बनारसी बोली में उनमें गुंडेपन की गन्ध आती है।

कुछ लोगों के पेशे ऐसे होते हैं, जिनके कारण अच्छे शब्द ऊँचे से थोड़े नीचे आ जाते हैं, जैसे महाजन, महाराज आदि। महाजन का सीधा अर्थ है, बड़ा आदमी। यही अर्थ संस्कृत में था और हिंदी में भी हो सकता है। पर, रुपये देने–लेनेवाले भी ऐसे ही महाजन होते हैं। अतः अब उसका रूढ़ अर्थ संकुचित और छोटा हो गया है। अब महाजन का मुख्य अर्थ होता है लेन–देन करनेवाला धनी व्यापारी। इसी प्रकार महाराज का प्रयोग बड़े राजाओं अथवा मान्य ब्राह्मणों के लिए होता था, पर जब ब्राह्मणों ने रसोई बनाने का पेशा अपनाया तब यह नाम भी उन्हीं के साथ रसोइया का पर्याय बन गया। एक बात ध्यान देने की है कि इस प्रकार पेशे के कारण सभी भाषाओं और प्रांतों में शब्दों का पतन हुआ है। बंगाल का ठाकुर (भगवान्), उड़ीसा का पुजारी, बिहारी बाबाज़ी और उत्तर प्रदेश का महाराज सभी अब रसोइया के पर्याय हो गए हैं। एक दूसरा बड़ा चलता शब्द है, भैया। उत्तर प्रदेश में इसका प्रयोग भाई के अर्थ में होता है, पर दक्षिण–पश्चिम के गुजराती तथा महाराष्ट्र लोगों में भैया का अर्थ होता है, हट्टा–कट्टा उत्तर प्रदेशीय नौकर। इसका कारण वही पेशेवाली बात है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि एक प्रांत से दूसरे प्रांत में जाने पर भी अनेक शब्दों का अर्थ बिगड़ जाता है।

जिस प्रकार प्रांत बदलने से अर्थ बदल जाता है, उसी प्रकार एक भाषा से दूसरी भाषा में जाने पर भी कभी–कभी अर्थ भ्रष्ट से हो जाते हैं, जैसे फारसी का खैरख्वाह शब्द हिंदी और बँगला में अब कुछ नीच वृत्ति प्रकट करता है। चालाक और चालाकी शब्दों में भी इस प्रकार का छोटा भाव आ गया है।

सतत उपयोग के कारण भी शब्दों की शक्ति कम हो जाती है, जैसे बाबू, महाराज, महाशय आदि। अब बाबू में वह बड़प्पन और जमींदारी का मूल अर्थ नहीं रह गया। अब तो वह अँगरेजी के मिस्टर और हिंदी के श्रीयुत् के समान शिष्टाचार वाचक हो गया। हिंदी के श्रीयुत् और श्रीमान् शब्दों की भी यही दशा हुई है। बाबू शब्द के बारे में तो यहाँ तक भाव बदला है कि अब बाबूगीरी का अर्थ होता है, छोटी नौकरी और आरामतलबी की वृत्ति।

10.8.2 अर्थोपदेश

इसी अपकर्ष से मिलती—जुलती दूसरी बात यह है कि लोग कुछ अपवित्र , अशुभ और अप्रिय बातों का बुरापन कम करने के लिए सुंदर शब्दों का प्रयोग करते हैं और इस प्रकार उन शब्दों का अर्थ गिरा देते हैं। जैसे शौच का अर्थ होता है, पवित्रता और सफाई। पर, अब 'शौच से निवृत्त होना', 'शौच जाना' आदि प्रयोगों में शौच का अर्थ होता है, पाखाने जाना। मृत्यु के लिए स्वर्गवास, पंचतत्वप्रप्ति, गंगालाभ, बैकुण्ठलाभ आदि शब्द प्रसिद्ध ही हैं।

कभी—कभी इसी कटुता को बचाने के लिए विपरीत भाव प्रकट करके अपना अर्थ स्पष्ट करते हैं। जैसे स्त्रियाँ कहती हैं कि दाल अधिक हो गई है अर्थात् चावल नहीं है। भोजन करते समय लोग कहते हैं, चावल अधिक हो गया है अर्थात् दाल नहीं है। इसी प्रकार राजा के बीमार पड़ने पर लोग कहते हैं कि बादशाह के दुश्मनों की तबीयत अच्छी नहीं है।

अमंगल और अशुभ से बचने के लिए लोग दुकान बंद करने को दुकान बढ़ाना, चूड़ी उतारने या तोड़ने को चूड़ी बढ़ाना, दिया बुझाने को दिया बढ़ाना कहते हैं। ऐसे प्रयोग हिंदी में ही नहीं, संस्कृत में भी होते हैं।

कभी—कभी प्रथाओं के कारण भी घुमाव—फिराव के शब्दों का प्रयोग होने लगता है, जैसे भारतीय स्त्रियाँ अपने पतियों का नाम नहीं लेतीं। यदि किसी स्त्री के पति का नाम है, रूपनारायण तो वह रुपया के स्थान पर कलदार अथवा मुद्रा शब्द का प्रयोग करने लगती है।

धार्मिक भावना के कारण भी अनेक शब्दों के अर्थों में परिवर्तन आ जाता है, जैसे शीतला की कृपा, माता का आगमन, महारानी की दया आदि बीमारी के वाचक हैं।

10 8.3 अर्थोत्कर्ष

अर्थापकर्ष का ठीक विपरीत कार्य है, अर्थोत्कर्ष। पर, जिस प्रकार जीवन में उत्कर्ष के उदाहरण कम मिलते हैं, उसी प्रकार भाषा के शब्द—भण्डार में भी अर्थोत्कर्ष के उदाहरण कम ही मिलते हैं। 'साहस' शब्द इसका बड़ा सुंदर उदाहरण है। संस्कृत में साहस का अर्थ होता था, हत्या, चोरी, व्यभिचार, कठोरता और झूठ, पर अब हिंदी, बँगला आदि में साहस का बड़ा ऊँचा और सराहनीय अर्थ हो गया है।

'कपड़ा' शब्द दूसरा उत्कर्ष का उदाहरण है। संस्कृत के कर्पट और पाली के कप्पट का अर्थ होता था जीर्ण वस्त्र। पर, अब तो उसका अर्थ बहुत ऊँचे पर आ गया है।

'मुग्ध' शब्द संस्कृत में सुंदर अथवा मूढ़ अर्थ देता था (मुग्धस्तु सुंदरे मूढ़े)। पर, अब हिंदी और बँगला के मुग्ध में अच्छाई ही अच्छाई रह गई है, बुराई तनिक सी भी नहीं है। हिंदी में मुग्ध होने का अर्थ कितना उत्कृष्ट है।

10.8.4 अर्थ का मूर्तीकरण तथा अमूर्तीकरण

कभी एक शब्द का अमूर्त अर्थ मूर्त हो जाता है अर्थात् वह शब्द क्रिया, गुण अथवा भाव का बोधक न होकर किसी द्रव्य का वाचक हो जाता है, और कभी इसके विपरीत मूर्त का अमूर्त बन जाता है। देवता और जनता पहले प्रकार के उदाहरण हैं, जनता (जन्ता) और देवता (देव्ता) पहले भाववाचक थे पर पीछे उनका मूर्त अर्थ हो गया। अब संस्कृत और हिंदी दोनों ही में इनका भाववाचक अर्थ भूल गया है। इसी प्रकार जाति (जन्म) और संतति (लगातार बढ़ते जाना, विस्तार) भी अमूर्त अर्थ के वाचक थे।

पर, बाद में ब्राह्मण जाति और तीन संतति आदि में मूर्त अर्थ आ गया। हिंदी के मिठाई और खटाई भाववाचक शब्द हैं, पर पीछे से वे द्रव्यवाचक हो गए।

दूसरे प्रकार की प्रक्रिया अर्थात् अमूर्त से मूर्त होने के उदाहरण हैं-कपाल और हृदय। ये दोनों शब्द मूर्त अंगों के वाचक थे। पर, अब उनका लाक्षणिक प्रयोग भाग्य और भावुकता के अर्थ में होने लगा है। इसी प्रकार बड़ी छाती, बड़ा कलेजा आदि में भी साहस, दृढ़ता आदि के अर्थ आ गए हैं। खट्टा, मीठा, तीता आदि गुणवाचक शब्द हैं, पर इनका प्रयोग द्रव्यवाचक के समान होता है, जैसे मुझे खट्टा, मीठा और तीता तो सदा के लिए मना है। शयन (बिछौना), भवन (घर), वसन (कपड़ा) आदि शब्द आज द्रव्यवाचक हैं पर पहले ये भाववाचक थे। अनट् प्रत्यय से बने भाववाचक शब्दों का मूर्तीकरण बहुत मिलता है।

10 8.5 अर्थसंकोच

प्रायः जब शब्द उत्पन्न होते हैं, उनमें बड़ी शक्ति होती है, उनका अर्थ भी बड़ा सामान्य और व्यापक होता है, पर, दुनिया के व्यापारों में पड़कर वे संकुचित हो जाते हैं। इस संकोच की सविस्तार कथा लिखी जाय तो अर्थ–विचार का बड़ा मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद अंग तैयार हो जाय। ब्रेअल ने लिखा है कि जो लोग जितने ही अधिक सभ्य हैं, उनकी भाषा में उतना ही अर्थ–संकोच पाया जाता है। एक ही बोली शब्द के सिपाही, वैद्य, दरजी, खिलाड़ी आदि भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न–भिन्न अर्थ होते हैं। प्रायः व्यवसायी और व्यापारी सदा सामान्य और यौगिक शब्दों से ही अपना काम लेते हैं पर, बाद में उनका अर्थ संकुचित हो जाता है जैसे खोलाई, भराई आदि जब चित्रकार के मुख से निकलते हैं, तो उनका विशेष और संकुचित अर्थ होता है।

पहले जो शब्द पूरी जाति के वाचक थे, पीछे वे एक वर्गमात्रा के बोधक हो जाते हैं, जैसे संस्कृत का मृग शब्द ऋग्वेद में पशु मात्र का वाचक था (देखिए मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः)। अभी तक मृगराज शब्द का पशुराज अर्थ होता है। पर बाद में मृग का अर्थ हो गया केवल हरिण। अँगरेजी के डीयर (deer)शब्द की भी ऐसी ही कहानी है। फारसी के मुर्ग शब्द का अर्थ होता है, पक्षी मात्र, पर अब बँगला, हिंदी आदि मुर्गा से केवल एक पक्षी–विशेष का बोध होता है। अबला शब्द भी इसी प्रकार का है। पर इससे अब केवल स्त्री का बोध होता है।

पहले प्रायः सभी वस्तुओं के सामान्य नाम थे। पीछे संकोच बढ़ते–बढ़ते आज वे विशेष और रूढ़ शब्द बन गए हैं। धान्य का पहले अर्थ था, सामान्य धन। पीछे धान्य का अर्थ हुआ अन्न और अब हिंदी में धान का अर्थ होता है, केवल चावल और वह भी बिना कूटा–बनाया चावल। पहले अन्न का अर्थ होता था, कोई खाद्य पदार्थ। पर, अब तो अन्न, फल, कंद और दूध आदि में भी भेद किया जाता है। घास शब्द का ही मूल अर्थ है 'जो कुछ चरा जाय और खाया जााय'। 'रत्न' शब्द की भी कहानी संकोच की ही कथा है। पहले किसी भी 'देन' को सुंदर धन को रत्न कहते थे। आज भी लाक्षणिक प्रयोगों में यह अर्थ विद्यमान है, जैसे स्त्रीरत्न, नररत्न इत्यादि परन्तु अब रत्न का मुख्य अर्थ विशेष प्रकार का पत्थर हो गया।

संबंधी शब्द तो संस्कृत में बड़ा व्यापक है। हिंदी में आकर वह केवल 'नातेदार' का अर्थ देने लगा। अर्थ–संकोच के विपरीत कार्य का नाम है, अर्थ–विस्तार। उपाधियों और कुछ गुणों के आधार पर ही नाम रखे जाते हैं, पीछे से उन नामों का रूढ़ और संकुचित अर्थ सामने रह जाता है और यौगिक अर्थ भूल जाता है। ऐसी स्थिति में वह नाम आवश्यकता पड़ने पर विशेष से सामान्य की ओर बढ़ने लगता है। जैसे हिंदी में स्याही का मूल अर्थ है, काली। पर, अब उसका रूढ़ अर्थ हो गया है, किसी भी प्रकार की लिखने की स्याही जैसे काली स्याही, लाल स्याही, नीली स्याही इत्यादि। पहले जो

शब्द मंगल अथवा प्रारंभ आदि के द्योतन के लिए सप्रयोजन लाया जाता है, वही पीछे सामान्य अर्थ का वाचक बन जाता है, जैसे श्रीगणेश, बिस्मिल्ला आदि आज केवल ग्रंथों तथा पूजनों में ही नहीं, सभी कामों में प्रयुक्त होने लगे हैं। अब श्रीगणेश का रूढ़ अर्थ है प्रारंभ। इसी प्रकार 'इति श्री' का भी अर्थ–विस्तार हुआ है। अब इसका अर्थ होता है समाप्ति।

बहुत से व्यक्तिवाचक नाम ऐसे होते हैं, जो अपने गुणों के कारण जनता में जातिवाचक बन जाते हैं, जैसे गंगा, लंका आदि। आज कोई भी पवित्र नदी भारत में गंगा के नाम से पुकारी जाती है। उत्तराखंड के पहाड़ों पर बीसों गंगा हैं। दक्षिणपथ की गोदावरी, कृष्णा आदि भी यात्रियों तथा तटवासियों द्वारा गंगा ही कही जाती हैं। अधिक स्पष्टता के लिए वे गोदावरी गंगा के समान नामों का व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार किसी गाँव की दूरी का बोध कराने के लिए लंका का प्रयोग किया जाता है, 'अरे वह तो लंका के छोर पर रहता है।'

'फिरंगी' शब्द में भी अर्थ–विस्तार का सुंदर उदाहरण है। पहले यह पुर्तगाली डाकू के लिए आता था। पीछे उनकी वर्णसंकर संतानों का अर्थ देने लगा। अंत में अब इस शब्द से यूरेशियन मात्र का बोध होता है। हिंदी और बँगला में फिरंगी से कभी–कभी यूरोपियन मात्र का अर्थ भी ले लिया जाता है।

बँगला का 'मेये' शब्द बड़ा मनोरंजक है। पहले यह माई का पर्याय था। पर पीछे से मेये का अर्थ लड़की और स्त्री होने लगा। रानीगंज में तो 'मये' का 'पत्नी' अर्थ भी होता है। मेये लोक और मेये मानुस में मेये सामान्य अर्थ में आया है।

बड़े महत्त्व के व्यक्तिवाचक नाम भी जातिवाचक बन जाते हैं, जैसे यहाँ तो कई 'कालिदास' बैठे हैं। अभी अनेकों 'गाँधी' की आवश्यकता है।

एक लिंग के शब्द से दूसरे लिंग का भी बोध कराना तो साधारण बात हैं। जैसे-घोड़े से घोड़ा–घोड़ी दोनों का और बिल्ली–बिल्ली दोनों का बोध होता है। आलंकारिक प्रयोगों में अर्थविस्तार साधारण बात होती है, जैसे

सीधा पथ, सीधा वचन, सीधा मन, फल खाना, मार खाना, भय खाना, घूस खाना आदि। इसी ढंग के उदाहरणों में हम उन्हें भी ले सकते हैं, जो एक इंद्रिय का गुण बताने के बाद दूसरी इंद्रियों के साथ भी आने लगते हैं। जैसे मधुर स्वाद, मधुर शब्द, मधुर गंध, मधुर स्पर्श, मधुर गीत इत्यादि।

कभी–कभी सादृश्य के कारण जब एक अंग का दूसरे पर आरोप किया जाता है, तब भी अर्थ का विस्तार हो जाता है, जैसे घड़े की गर्दन, बोतल का गला, पतंग की पूँछ, नदी की गोद, आलू की आँख, अनानास की आँखें, कमल का उदर इत्यादि। इस प्रकार के उदाहरण संस्कृत, हिंदी, बँगला, अँगरेजी आदि सभी भाषाओं में बहुत मिलते हैं।

सच पूछा जाय, तो सभी अर्थ–विचार उपचार के अंतर्गत आ जाते हैं और पीछे जो उदाहरण आए हैं, वे भी उपचार के ही उदाहरण हैं। उपचार और संसर्ग इन्हीं दो की व्याख्या में पूरा अर्थविचार आ जाता है, तो भी हम यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण चुनेंगे, जो पिछले कार्यों में न आए हों।

मुख्यार्थ बोध होने पर और देश, काल अथवा अन्य किसी कारण से संबद्ध होने पर ही उपचार की क्रिया होती है। उपचार के उदाहरण तो सभी साहित्य के विद्यार्थी जानते हैं। किसे लाक्षणिक प्रयोगों के उदाहरण न मालूम होंगे? अतः हम दो ही चार उदाहरण देंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1. चोटी और दाढ़ी का मेल होना कठिन है, क्योंकि अब धर्म ही नहीं, इसमें राजनीति भी घुस पड़ी है। यहाँ चोटी से हिंदू और दाढ़ी से मुसलमान का ग्रहण हुआ है। इस प्रकार एक अंग से पूरे अंगों का ग्रहण हुआ है।

2. लेखक और रचयिता के नाम से ही उसकी सारी कृतियों का बोध हो जाता है। हिंदी के विद्यार्थी को 'बंकिम, नवीन, रवींद्र, शरद' आदि का पढ़ना उतना ही आवश्यक है, जितना भारतेंदु, प्रसाद और मैथिलीशरण को।

3. विशेष ध्यान में आनेवाला बाह्य लक्षण भी कभी–कभी पूरी वस्तु के लिए उपचरित होता है। जैसे, हम लाल पगड़ी से सिपाही का और सफेद पगड़ी से पारसी लोगों के पुरोहित का अर्थ लेते हैं।

4. कभी–कभी जिस चीज से वह वस्तु बनी रहती है, उसी का नाम चल पड़ता है, जैसे तार से अब केवल द्रव्य का ही नहीं, उस प्रकार के समाचार भेजने का अर्थ लिया जाता है।

5. कुछ शब्दों में भ्रम के कारण भी उपचार होता है, जैसे संस्कृत के अवकाश से हिंदी और बँगला में विश्राम समय का बोध होने लगा है। वास्तव में अवकाश का अर्थ होता है देश, पर अब देश से वह शब्द काल तक पहुँच गया।

10.8.6 रूपक

सच पूछा जाय तो रूपक उपचार के भीतर ही आ जाते हैं, तो भी उनमें कुछ विशेषता होने के कारण उन्हें लोग अलग गिनते हैं। अन्य उपचार के कारण काम करता है कि हमारा धीरे–धीरे काम करते हैं। पर, रूपक उसी क्षण इस तेजी से ध्यान एकदम उस ओर खींच जाता है। उदाहरण के लिए पंजाब का सिंह अभी जीवित है। वह गदहा कहाँ गया? उस साँपिन से सभी डरते हैं। आज कमल मुरझाया क्यों है?

10.8.7 अनेकार्थता

जब एक शब्द दूसरे अर्थ में आने लगता है, तब यह आवश्यक नहीं होता कि पहला अर्थ मिट ही जाय। इस प्रकार एक शब्द का कभी–कभी बहुत से अर्थों में व्यवहार होने लगता है। यह भी लक्षण और उपचार के अंतर्गत आता है। पर, अध्ययन की सुविधा के लिए उसके उदाहरण अलग दिए जाते हैं।

1. 'मूल' शब्द दर्शन; गणित, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, भाषाविज्ञान आदि में भिन्न–भिन्न अर्थ देता है।

2. 'धातु' भी व्याकरण, वैद्यक, खनिजशास्त्रा आदि में भिन्न–भिन्न अर्थों में आता है। बौद्ध लोग दंतधातु से बुद्ध के स्मारक का अर्थ लेते हैं।

3. योग भी दर्शन, गणित, व्यायाम आदि में भिन्न–भिन्न अर्थ रखता है।

अनेकार्थता का एक कारण

कभी–कभी संक्षेप की प्रवृत्ति शब्द को अनेकार्थक बना देती है। जैसे कांग्रेस, सभा आदि। अमेरिका वाला कांग्रेस से अपनी व्यवस्थापिका का, यूरोपियन इतिहासज्ञ वियेना की कांग्रेस का और हिंदुस्तानी अपनी राष्ट्रीय सभा का अर्थ लेता है। इसी प्रकार काशी में सभा कहने से साहित्यिक नागरीप्रचारिणी सभा का, पंडित लोग दक्षिणावाली सभा का और व्याख्यावाले व्याख्यानवाली सभा का अर्थ लेते हैं।

10.8.8 एकोच्चरित समूह

प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द–समूह प्रयुक्त होते हैं, जिनको हम चाहें तो नित्य समास कह सकते हैं। अर्थात् विग्रह करने पर उनका अर्थ ही बदल जाता है। जैसे अध्यापक बच्चों को पढ़ाने के पूर्व कहलवाते हैं 'ओनामासी धम्'। यह एक एकोच्चरित समूह है। इसका पहला रूप था –नमः सिद्धम्। पर आजकल प्रायः कोई भी इसको नहीं समझता, केवल मंगल के लिए इस पद–समूह का व्यवहार होता है।

प्रशस्तियों और सिरनामों में भी ऐसे समूहों के उदाहरण मिलते हैं, 'सिद्ध श्री सर्वोपरि विराजमान राज–राजेश्वर' इत्यादि इत्यादि अथवा 'अत्रा कुशलं तत्रास्तु', 'शेष शुभम्' आदि। बहुत–सी कहावतें भी इसके उदाहरण हैं, जैसे 'घर के न घाट के'।

10.8.9 समास

रूपविचार में हम प्रत्ययविधि और समासविधि का विचार कर चुके हैं, पर वास्तव में समास का अर्थ–विचार से अधिक संबंध है। अर्थ ही समास का कारण होता है और वही उसके रूप की व्यवस्था करता है। संस्कृत में तो अर्थ की दृष्टि से ही समास से नित्य, अनित्य आदि अनेक भेद किए जाते हैं। अव्ययीभाव, द्वंद्व, तत्पुरुष, बहुब्रीहि आदि का अर्थ–विचार की दृष्टि से बड़ा सुंदर अध्ययन होता है। यहाँ हम तत्सम उदाहरणों को नहीं देते हैं, केवल कुछ तद्भव शब्दों को उद्धृत कर देते हैं। विशेष अध्ययन के लिए कोई भी विद्यार्थी व्याकरण लेकर सविस्तार विचार कर सकता है।

चीर–फाड़, दौड़–धूप, आदमी–जन, देख–भाल, लपक–झपक, हल–चल, धरपकड़, मुँहमुँदा दिन, हायपेट, जीतोड़ परिश्रम, कलमुँहा, कछलंपट, मुँहमाँगा, परकटा, नकटा, बदरफट घाम, मुँहफट, मुँहदेखी, बदमिजाज, पेटपोंछना, घरघुसना, घोड़मुँहा, सस्तमुल्ला, मिठबोल्ला, हथ–उधरा, दियासलाई, मरभूखा, मुछमुंडा, कामचोर, बाँस का फाटक, राजादरवाजा, बड़ेगाँव, आए दिन, मनभाया, मनभावती, गंजोड़ा इत्यादि।

10.8.10 नामकरण

नामकरण

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

10.9 शब्द और इसके भेद

साधारणतया लोग वाक्य के अल्पतम सार्थक अवयव को शब्द कहते हैं। संस्कृत शब्दानुशासन के कर्त्ता पतंजलि से लेकर आज तक प्रायः सभी वैयाकरणी शब्द का इसी अर्थ में व्यवहार करते हैं। कई आचार्यों ने शब्द को वाणी, भाषा अथवा वाक्य सामान्य का उपलक्षण भी माना है अर्थात् वाक्य और शब्द दोनों के अर्थ में 'शब्द' का प्रयोग किया है। शब्द–शक्ति के कारण में भी शब्द का वैसा ही व्यावहारिक तथा व्यापक अर्थ लिया जाता है, अन्यथा प्रत्यय से लेकर पद, वाक्य तथा महावाक्य तक की शक्तियों का अंतर्भाव शब्द–शक्ति न हो पाता। शब्द तीन प्रकार के होते हैं वाचक, लक्षक तथा व्यंजक। मुख्य और प्रसिद्ध अर्थ को सीधे–सीधे कहनेवाला शब्द वाचक कहलाता है। लक्षक अथवा लाक्षणिक शब्द ,लाक्षणिक अर्थ को देता है, अभिप्रेत अर्थ को लक्षित मात्र करता है, और व्यंजक शब्द (मुख्य अथवा लक्ष्य अर्थ के अतिरिक्त) एक तीसरी बात की व्यंजना करता है; उससे प्रकरण, देशकाल आदि के अनुसार एक अनोखी ध्वनि निकलती है। उदाहरणार्थ यह मेरा घर है। इस वाक्य में घर शब्द वाचक है, अपने प्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर, सारा घर खेल देखने गया है । इस वाक्य में 'घर' उसमें रहने वालों का लक्षक है अर्थात् यहाँ घर शब्द लाक्षणिक है। और यदि कोई अपने ऑफिस मित्रों से बात करते–करते कह उठता है, 'यह घर है, खुलकर बातें करो।' तब 'घर' कहने से यह ध्वनि निकलती हैं कि ऑफिस नहीं है। यहाँ घर शब्द व्यंजक है।

10.9.1 शब्द–शक्ति का स्वरूप

इन सभी प्रकार के शब्दों का अपने–अपने अर्थ से एक संबंध रहता है। उसी संबंध के बल से प्रत्येक शब्द अपने–अपने अर्थ का बोध कराता है। बिना संबंध का शब्द अर्थहीन होता है। उसमें किसी भी अर्थ के बोध कराने की शक्ति नहीं रहती। संबंध उसे अर्थवान् बताता है, उसमें शक्ति का संचार करता है। संबंध की शक्ति से ही शब्द इस अर्थमय जगत् का शासन करता है, लोकेच्छा का संकेत पाकर चाहे जिस अर्थ को अपना लेता है, चाहे जिस अर्थ को छोड़ देता है। इसी संबंध शक्ति के घटने–बढ़ने से उसके अर्थ की ह्रास–वृद्धि होती है। इसी संबंध के भाव अथवा अभाव से उसका जन्म अथवा मरण होता है अर्थात् संबंध ही शब्द की शक्ति है, संबंध ही शब्द का प्राण है। इसी से शब्दतत्त्व के जानकारों ने कहा है 'शब्दार्थ संबंधः शक्तिः' अर्थात् शब्द और अर्थ के संबंध का नाम शक्ति है।

10. .2 शक्ति के अन्य पर्यायवाची शब्द

शब्द और अर्थ के इस संबंध को किसी–किसी आचार्य ने 'वृत्ति' और किसी–किसी ने 'व्यापार' नाम दिया है, इससे शब्दार्थ–स्वरूप के प्रकरण में सामान्यतया शब्दार्थ संबंध, शब्दशक्ति, शब्दवृत्ति और शब्द–व्यापार का अभेद से व्यवहार किया जाता है। पर, प्रत्येक नाम में अपना निरालापन है। शक्ति में बल और ओज है। वृत्ति में आश्रित रहने का भाव है। व्यापार में क्रिया और उत्पादन की ओर झुकाव है। 'कारण' जिसके द्वारा कार्य करता है, उसे 'व्यापार' कहते हैं। घड़े के बनाने में कुंभकार, मिट्टी, चाक आदि कारण हैं। चाक का घूमना, कुंभकार का उसे घुमाना आदि व्यापार है। घड़ा कार्य है इसी प्रकार शब्द से अर्थ का बोध कराने में शब्द 'कारण' होता है; अर्थ–बोध कार्य और शब्द–शक्ति कारण का व्यापार है।

वैयाकरण वास्तविक शक्ति के व्यावहारिक रूप की चार कलाएँ मानते हैं दिक्, काल, साधन और क्रिया। दिक् में भूगोलशास्त्रीय दृष्टि से शब्द शक्ति का समावेश होता है। 'काल' की लीला इतिहास में देखने को मिलती है। शब्द में कालवश शक्ति का ह्रास

तथा उपचय हुआ करता है। भाषाशास्त्रियों के विचार में शब्द–शक्ति पर भूगोल और इतिहास का प्रभाव स्पष्ट देख पड़ता है। साधन का अर्थ वह शक्ति है, जिसके द्वारा कोई भी वस्तु अपना व्यापार सिद्ध करती है। कारक इसीलिए साधन के अंतर्गत आ जाते हैं; क्योंकि शब्द की इसी शक्ति के द्वारा वाक्य की क्रिया निष्पन्न होती है। साधन का इतना व्यापक अर्थ मानने पर प्रश्न उठता है कि क्रिया का क्या अर्थ है। क्रिया से यहाँ आलंकारिकों के शब्द–व्यापार का अभिप्राय है। साधन और क्रिया (व्यापार) में अंतर स्पष्ट है। साधन के द्वारा वाक्य की क्रिया (अर्थात् धात्वर्थ) निष्पन्न होती है। वह वाक्य के प्रत्येक शब्द को आपस में संबद्ध कर देती है। पर व्यापार–रूप क्रिया द्वारा शब्द अपने अर्थ से संबद्ध होता है। साधन एक शब्द को दूसरे शब्द से जोड़ता है। क्रिया (अथवा व्यापार) शब्द को उसके ही अर्थ से जोड़ती है। यद्यपि दोनों की ही शक्ति है, पर एक बहिरंग है, दूसरी अंतरंग। इस प्रकार क्रिया का अर्थ एक शब्द–भेद नहीं रह जाता। क्रिया से यहाँ शब्द की अर्थ–बोध कराने की क्रिया का बोध होता है। शब्दार्थ–समीक्षा की दृष्टि से इसी शब्द–क्रिया अर्थात् शब्द व्यापार का प्राधान्य रहता है। शक्ति के इस व्यावहारिक स्वरूप की व्याख्या करने के लिए उससे संबद्ध शब्द और अर्थ दोनों की ही आंशिक व्याख्या करनी पड़ती है। अतः शब्द–शक्तियों को अर्थात् अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना को और उन शक्तियों के आश्रयभूत वाचक, लक्षक तथा व्यंजक तीनों प्रकार के शब्दों को अपना प्रधान विषय बनाता है। शब्द की व्याख्या में थोड़ी अर्थ की भी व्याख्या आ ही जाती है। अर्थ के लिए ही तो शब्द व्यापार करता है।

10. .3 वाचक शब्द

शास्त्रीय ढंग से सूत्र–रूप में कहें, तो साक्षात् संकेतित अर्थ को कहनेवाला शब्द वाचक कहलाता है। साधारणतया व्यवहार में देखा जाता है कि लोगों में जो 'संकेत' अथवा 'समय' प्रचलित रहता है, उसी के सहारे शब्द अपने अर्थ का बोध कराता है अर्थात् केवल शब्द से श्रोता को अर्थ का बोध नहीं हो सकता। किसी अनभिज्ञ से यदि कहा जाय कि 'गाय लाओ', तो वह इस वाक्य से क्या समझ सकता है? उसके लिए इन शब्दों में कोई अर्थ ही नहीं है। वह जानता ही नहीं कि इन शब्दों से किस अर्थ की ओर संकेत किया गया है। पर, वही मनुष्य किसी जानकार को कहते सुनता है कि 'गाय लाओ' और देखता है कि दूसरा गाय ले आता है। इन दोनों के इस व्यवहार को देखकर वह वाक्य का अर्थ समझ लेता है। इसी प्रकार व्यवहार से वह 'गाय बाँधो', 'घोड़ा लाओ' आदि वाक्यों का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। कुछ वाक्यों का ज्ञान हो जाने पर वह अपनी अन्वय–व्यतिरेक वाली बुद्धि से 'गाय' और 'लाओ' आदि को पृथक्–पृथक् समझने लगता है। पहली बार उसने वाक्य का अर्थ तो समझ लिया था, पर उसका व्याकरण न समझ सका था। धीरे–धीरे 'गाय' शब्द को कई अन्य शब्दों के साथ उसी व्यक्ति का अर्थबोध कराते हुए देखकर उसका अर्थ समझ लिया, अर्थात् यह जान लिया कि गाय शब्द का किस वस्तु–विशेष में संकेत है। इसी प्रकार 'लाओ' क्रिया का कई वाक्यों में अन्वय देखकर व्यतिरेक द्वारा उसका भी संकेत समझ लेता है। अब संकेत ज्ञान हो जाने से वे ही शब्द उसे अर्थ का बोध कराने लगते हैं।

10.9.4 व्यवहार द्वारा संकेत–ग्रह

बालक की भाषा सीखने की प्रक्रिया पर ध्यान देने से संकेत ज्ञान की बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। एक सयाना आदमी कहता है 'गाय लाओ'। दूसरा उसके आज्ञानुसार गाय ले आता है। बालक यह सब देख–सुनकर उस वाक्य का अर्थ समझ जाता है। आगे चलकर 'गाय बाँधो', 'घोड़ा लाओ' आदि वाक्य भी अपने बड़े–बूढ़ों के व्यवहार को देखकर समझने लगता है। तब कहीं उसकी अन्वय व्यतिरेक द्वारा सोचने

की सहज प्रवृत्ति 'गाय' और 'लाओ' का अवयवार्थ समझा देती है। पहले बालक व्यवहार से पूरे वाक्य का अर्थ समझता है। फिर, धीरे–धीरे व्यवहार से ही वह अलग–अलग शब्दों का अर्थ समझने लगता है, अर्थात् उसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि किस शब्द का किस अर्थ में संकेत है। संकेत के अन्य सात ग्राहक जब बालक व्यवहार के कुछ शब्द समझने लगता है, गुरुजन उसे बहुत से शब्द व्यवहार के बाहर के भी समझा देते हैं। वह उन्हें चुपचाप मान लेता है। आप्त पुरुष बच्चे को एक पदार्थ दिखाता है और कहता है, यह पुस्तक है। बालक इस शब्द के संकेत को झटपट समझ जाता है। आगे चलकर बालक व्याकरण पढ़ता है; प्रकृति, प्रत्यय आदि का ज्ञान अर्जन करता है। अनेक शब्दों को तथा शब्दों के अनेक रूपों को सहज ही समझने लगता है। कुछ शब्दों का अर्थ वह उपमान के बल से लगा लेता है। वह गाय पहचानता है, तो 'गवय' की बात सुनकर उसको गाय जैसा एक पशु समझ लेता है। वह मनुष्य का अर्थ व्यवहार से सीख चुका है। इसलिए उपमान की सहायता से वह देव, यक्ष आदि योनियों की भी कल्पना कर लेता है। एक देव शब्द के अजर, अमर आदि अनेक पर्याय वह कोष से सीख लेता है। संदेह होने पर वह वाक्य–शेष से संकेत–निर्णय करता है। गंगा शब्द का संकेत नदी और लड़की दोनों में है। पर, जब इस शब्द का वाक्य में प्रयोग होता है तब दूसरे शब्दों से इसका भी अर्थ स्पष्ट हो जाता है। 'गंगा की धारा में आज कितना वेग है' इस वाक्य का 'गंगा' शब्द स्पष्टतया नदी–वाचक है। 'यव' का अर्थ 'जौ' भी होता है और 'कंगुनी' का चावल भी। वाक्यशेष अर्थात् प्रसंग से इसका भी अर्थ स्पष्ट हो जाता है। आर्य लोगों के प्रसंग में यव का अर्थ 'जौ' होता है, पर म्लेच्छ लोग 'यव' से कंगुनी का चावल समझते हैं। कुछ शब्द समझे हुए शब्दों के साथ आने से अनायास ही समझ में आ जाते हैं। जैसे 'वसंते पिकः कूजति' वसंत में बोल रहा है इस वाक्य में पिक शब्द दूसरी भाषा का है पर पाठक 'वसंत में बोलता है' इतना अर्थ समझ लेने पर पिक शब्द का भी अर्थ लगा लेता है। 'मधुप कमल पर मँडरा रहे हैं' इस वाक्य के 'मधुप' शब्द को कमल आदि शब्दों को समझने वाला सहज ही समझ लेता है। इस प्रकार सिद्ध पदों की सन्निधि से बालक बहुत से शब्दों का संकेत ज्ञान कर लेता है। इतने पर भी जो शब्द समझ में नहीं आते, उन्हें स्पष्ट करने के लिए वह विवृत्ति की सहायता लेता है। व्याख्या देशी–विदेशी सभी भाषाओं के शब्द स्पष्ट कर देती है। यदि बालक रसाल शब्द नहीं समझता, तो शिक्षक या तो रसाल के रूप–रंग की व्याख्या करके उसका अर्थ समझा देता है अथवा रसाल का ऐसा पर्यायवाची शब्द बताता है, जो विद्यार्थी को पहले से ज्ञात हो। उसी भाषा में अथवा दूसरी परिचित भाषा में अनुवाद करके समझाने का ही नाम विवृत्ति है।

व्यवहार संकेत–ग्राहकों में प्रधान है

विचार करने पर अन्य सभी संकेत के ग्राहक व्यवहार में अंतर्भूत हो जाते हैं। व्यवहार से बालक सभी शब्द सीख सकता है। पर, अपनी आँखों से देखने–सुनने में बड़ा समय लगता है। थोड़े वर्षों का छोटा–सा जीवन संसार की असंख्य वस्तुओं का कैसे अनुभव कर सकता है? इसी से ऐसे उपायों से काम लेना पड़ता है, जिनसे अधिक से अधिक शब्द, कम से कम समय में, सीखे जा सकें। कोष, व्याकरण, उपमान, आप्तोपदेश, वाक्य–शेष, विवृति, सन्निधि ये सातों संकेत के ग्राहक ऐसे ही उपाय हैं। यद्यपि व्यवहार संकेत के ग्राहकों में शिरोमणि है तथापि इन अन्य उपायों का भी संकेत ग्राह्य के लिए कम महत्त्व नहीं।

इस प्रकार इन व्यवहारादि–ग्राहक द्वारा संकेत का ज्ञान हो जाने पर ही शब्द बोध होता है अर्थात् संकेत की सहायता से ही शब्द द्वारा अर्थ–बोध होता है। अतः प्रत्येक अर्थ में संकेत का होना स्वयंसिद्ध सा है। किसी में साक्षात् संकेत रहता है और किसी

में असाक्षात्। जिस अर्थ से जिस शब्द का संबंध लोगों में प्रसिद्ध है, उस अर्थ में उस शब्द का सीधा साक्षात् संकेत रहता है; जेसे 'बैल', गाड़ी खींच रहा है । इस वाक्य में बैल शब्द के अर्थ में साक्षात् संकेत है। पर जब कभी कोई शब्द प्रयोजन–वश किसी अप्रसिद्ध अर्थ से संबंध जोड़ लेता है, उसका संकेत साक्षात् नहीं रह जाता उस शब्द का एक प्रसिद्ध अर्थ में संकेत रहता है। अतः दूसरे अर्थ में उसका संकेत उस प्रसिद्ध अर्थ की परंपरा में से होकर आता है; जैसे यह लड़का बैल है । इस वाक्य में बैल शब्द का संकेत 'बैल' में न होकर बैल के सादृश्य में है। बैल शब्द का संकेत मुख्य अर्थ में होकर दूसरे अर्थ में पहुँचता है। अतः बैल शब्द का 'पशु' में साक्षात्–संकेत है और मूर्ख के अर्थ में असाक्षात्–संकेत। साक्षात्–संकेतित अर्थ वाले शब्द को वाचक कहते हैं। इससे पहले वाक्य का बैल शब्द वाचक है। दूसरे वाक्य का नहीं। यह वाचक शब्द जिस शक्ति के द्वारा अपने अर्थ का बोध कराता है, उसे अभिधा कहते हैं।

10.9.5 संकेत का स्वरूप

वाचक शब्द से अर्थ–बोध कैसे होता है? इस प्रश्न को समझने के लिए संकेत का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। संकेत क्या है? संकेत का ज्ञान कैसे होता है? संकेत कैसे बनता है? संकेत से ग्राह्य क्या है? संकेत किसमें होता है अर्थात् संकेत–विषय क्या है? संकेतित अर्थ का स्वरूप क्या है? इत्यादि प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है। पहले दो प्रश्नों पर विचार हो चुका है। 'संकेत' समय को कहते हैं। इस शब्द से इस अर्थ का बोध होना चाहिए, इस अर्थ के लिए इस शब्द का प्रयोग करना चाहिए, ऐसा 'समय' ही संकेत कहलाता है। इस संकेत का ज्ञान प्रधानतया व्यवहार से होता है।

10.9.6 संकेत ग्राहक और संकेत कर्त्ता

अन्य संकेत के ग्राहक व्यवहार के रूपांतर मात्रा हैं। शब्द नित्य है। शब्द की शक्ति नित्य है। पर, उस शक्ति का ग्राहक (अर्थात् ज्ञान करानेवाला) संकेत अनित्य है। उसे लोकेच्छा बनाती–बिगाड़ती है। यहाँ लोकेच्छा व्यक्तिगत इच्छा का नाम नहीं है। किंतु, उससे सर्वसाधारण की इच्छा का अभिप्राय है। शब्द तो न जाने कब से चला आ रहा है और न जाने कब तक चलेगा। वह अनादि है, अनंत है और इसी से नित्य भी है। केवल संकेत–निर्धारण करना प्रयोक्ता (लोक) के हाथ में है। शब्द सदा किसी न किसी रूप में रहता है; जब लोग जैसा संकेत बना लेते हैं, वैसा ही (संकेतित) अर्थ उस शब्द से भासने लगता है। विश्व में कहीं न कहीं अर्थ उलझा पड़ा रहता है; जब लोग संकेत को शब्द की सेवा में भेजते हैं, शब्द उसकी सहायता से अर्थ को समझाकर प्रकाश में ला देता है। लोगों को अर्थ–बोध होने लगता है। अर्थ–बोध वास्तव में होता है। शब्दार्थ संबंध के ज्ञान से शब्द–शक्ति के ज्ञान से, पर संकेत उस संबंध का परिचायक होता है, उस शक्ति का ज्ञान कराता है। अतः संकेत का महत्त्व पहले आँखों के सामने आता है। संकेत होता भी है अर्थ–बोध का सहकारी कारण। इस प्रकार मीमांसकों के अनुसार लोकेच्छा संकेत बनाती है। लोक–व्यवहार से संकेतग्रह होता है। संकेत द्वारा शक्ति–ग्रह होता है और शक्ति द्वारा अर्थग्रह अर्थात् शब्द–बोध होता है। पर व्यावहारिक शब्द को वे भी नैयायिकों की भाँति अनित्य मानते हैं। मीमांसकों ध्वनि और वर्ण को नित्य नहीं मानते। व्यवहार से ही ध्वन्यात्मक शब्द की अनित्यता स्पष्ट है। शब्द के नाद और रूप में लोप, आगम, विपर्यय, विकार आदि कार्य प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

10.10 सारांश

प्रिय छात्रों आप इस इकाई के अध्ययन के पश्चात शब्द और अर्थ का आपस में संबंध तथा अर्थ की उपयोगिता के विषय में अच्छी तरह से समझ गए होंगे। प्रस्तुत इकाई में आपने अध्ययन किया कि किस प्रकार देश, काल और परिस्थिति अनुसार अर्थ परिवर्तन होते रहते हैं क्योंकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है।

.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र– डॉ कपिल देव द्विवेदी
2. भाषा विज्ञान– डॉ भोलानाथ तिवारी
3. अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन– कपिल देव द्विवेदी
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डॉ कपिल देव द्वेदी

10.12अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. जब शब्दों उत्पन्न होते हैं उनमें बड़ी––––––– होती है।
2. शब्द शक्ति––––– प्रकार की होती है।
3. पुरानी भाषा की विभक्तिओं से–––––––– की शोभा बढ़ती है।
4. शब्द और –––––––––– का संबंध होता है।

ख. सही अथवा गलत लिखें

1. अर्थ उत्कर्ष शब्द पहले अच्छे और बाद में पूरे अर्थ में आने लगते हैं।
2. भाषा परिवर्तनशील है।
3. मुख्य अर्थ वाचक शब्द शक्ति अभिधा कहलाती है।
4. प्रतिमान व्यंग अर्थ वाली शब्द शक्ति लक्ष्णा है।
5. प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ होते हैं।
6. अर्थ और शब्द आपस में संबंधित नहीं है